ॐ

नमः सिद्धेभ्य

धन्य पुरुषार्थी !!

(पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र
पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी
सम्बन्धित अन्य धर्मात्माओं के हृदयोद्गार)

प्रकाशक
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

- **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
  ५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
  भावनगर-३६४००१
  फोन : (०२७८) २४२३२०७ / २५१५००५
- **गुरु गौरव**
  श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,
  पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़
- **श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट**
  विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़
  फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२
- श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१
  श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७
  अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

प्रथमावृत्ति : प्रत : ५०००, द्वितीयावृत्ति प्रतः १०००
तृतीयावृत्ति : प्रत : ५०० (कुंदकुंदाचार्यदेव आचार्य पदवी दिन, (
३१-१२-०७)
पृष्ठ संख्या : ८ + ८४ = ७२
लागत मूल्य : १७/-
विक्री मूल्य : १०/-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकिय
(तृतीयावृत्ति)

प्रस्तुत पुस्तिका `**धन्य पुरुषार्थी** !!' में पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी के लिये पूज्य गुरुदेवश्री, पूज्य बहिनश्री चंपाबहन व पूज्य भाईश्री शशीभाई के कुछएक हृदयोद्‌गारों को संकलित करके प्रकाशित किये हैं।

जीव को परिभ्रमण करते हुए अनन्तकाल में अनेक बार तीर्थंकर भगवान का, महामुनिराजों का, ज्ञानीपुरुषों का सत्समागम प्राप्त हुआ है फिर भी ऐसे योग को अकल्याणकारीरूप से विसर्जित किया है। जब जीव का परिभ्रमण से छूटना होता है तब जिन महापुरुष का प्रत्यक्ष योग उपलब्ध हो उनके प्रति भगवानतुल्य बहुमान आता है, महिमा आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री के स्वर्णमयी इतिहास में अनेकानेक भव्य प्रसंग बने। उनके प्रभावना योग से अनेकानेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ और जगह-जगह पर स्वाध्याय की प्रथा शुरू हुई। जहाँ-जहाँ पूज्य गुरुदेवश्री के पावन चरणकमलों का स्पर्श होता वहाँ सब मंगल-मंगल हो जाता यह जगतविदित है। पूज्य गुरुदेवश्री का वर्तमान समाज पर असीम उपकार है जिसे लेखनी में व्यक्त करना असंभव है।

पूज्य गुरुदेवश्री का मंगलकारी अंतरंग परिणतिरूप जीवन तो सदा निज ज्ञायकस्वभाव के ज्ञान-ध्यानमय था। जो निजस्वभाव की प्र+भावना = दिव्य भावनास्वरूप था। उस दिव्य भावनामें से समय निकालकर अर्थात् स्वयं के ज्ञान-ध्यानरूपी जीवनमें से समय

निकालकर जगत के जीवों का कल्याण हो ऐसी एक निष्कारण करुणावश उपदेश का अमृतप्रवाह बहाया जिससे अनेक जीवों का हित हुआ और भविष्य में भी होता रहेगा। यह प्रभावना ही सम्यक् प्रभावना है।

जीव जन्म-मरण से मुक्त हो व सादि अनन्तकाल आत्मिकसुख की समाधि में रहे ऐसा निमित्त जिनके विकल्पांश और वचनयोग में हो उनकी महिमा या उपकार किस माध्यम से करें ?! उनके वचनयोग का तो क्या कहना !! क्या इनका एक ही प्रवचन किसी जीव के जन्म-मरण मिटा दे यह सम्भव है ? हाँ, ऐसा बना है। **वे महापात्र जीव हैं - निहालचंद्र सोगानीजी** ! पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को जिन्होंने प्रत्यक्षरूप से परिणमित कर दिया ऐसे ये पुरुषार्थी धन्य हैं !!

पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि `सोनगढ़' में बना यह प्रसंग अनेकानेक प्रसंगोंमें से एक अद्वितीय प्रसंग है ! इस प्रसंग से पूज्य गुरुदेवश्री के तीर्थंकरत्व की प्रतीति आती है। भविष्य में जब पूज्य गुरुदेवश्री के समवसरण की रचना होगी तब तो अनेकानेक जीवों का कल्याण होगा ही परन्तु इसका भव्य मंगल प्रारम्भ यहाँ से शुरू हो गया। उनकी वाणी को `सोनगढ़' आकर चौबीस घंटे में सार्थक करनेवाले को पुरुषार्थमूर्ति न कहें तो क्या कहें ?

पूज्य सोगानीजी का जीवनपरिचय व वचनामृतों को देखते हुए यह बात अवश्य प्रतीति में आती है कि, वे अत्यंत गुप्तरूप से स्वयं की आराधना में लगे रहना चाहते थे। ऐसे गुप्त रत्न को प्रसिद्धि में लाने का श्रेय पूज्य भाईश्री `शशीभाई' को जाता है। यह उनका समस्त मुमुक्षु समाज पर उपकार है। जिन्होंने परीक्षादृष्टि से पूछे हुए एक ही प्रश्न पर से उनकी अंतरंग परिणति को पकड़ लिया

था ! पूज्य `सोगानीजी' का अत्यंत निकटतम परिचय करके उनका अंतरंग पकड़नेवाले पूज्य भाईश्री को अनेकबार विकल्प आता था कि, इस बात की खबर पूज्य गुरुदेवश्री को हो जाये तो बहुत अच्छा ! इस भावनावश उन्होंने यह बात पूज्य गुरुदेवश्री को कही। तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्रीने रात्रि चर्चा में पूज्य `सोगानीजी' को परीक्षादृष्टि से संबोधन भी किया। परन्तु पूज्य `सोगानीजी' मौन रहे। अगर उस वक्त कुछ बोले होते तो तभी प्रकाश में आ गये होते। परन्तु तत्पश्चात उनके स्वर्गवास बाद जब उनके पत्र व वचनामृत पूज्य गुरुदेवश्री ने पढ़े तब अपने सम्यक्ज्ञान में इनके सम्यक्त्व की प्रतीति आ गई, वह यहाँ तक कि उनके पुरुषार्थ की तेज़ी को देखकर उनका एकावतारीपना भी घोषित किया। और `हमारे नमस्कार उनको प्राप्त होंगे।' यह कहकर तो उनके पुरुषार्थ की अति-अति सराहना की। ऐसे अपने गुरुदेवश्री की गुरुता भी धन्य है !!

पूज्य `सोगानीजी' का विस्तृत जीवन परिचय `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' (हिन्दी) में प्रकाशित हुआ है ही, जिसमें उनकी पूर्व भूमिका, साधकदशा, पुरुषार्थ की तीव्रता, गुरुभक्ति, निश्चय-व्यवहारात्मक संतुलित वचनामृत एवं पत्र, पूज्य गुरुदेवश्री के कुछ प्रवचन इत्यादि अनेक विषय संकलित किये गये हैं। जिसे पाठकवर्ग वहीं से पढ़ ले।

इस पुस्तिका में पूज्य गुरुदेवश्री व पूज्य भाईश्री के उद्‌गारों में तो प्रवचनों की तारीख, गाथा व समय का ज़िक्र कोष्ठक में किया ही है। यह विषय प्रवचनों के बीच-बीच से लिया है। अतः संभव है कि पाठक को कोई बात समझ में न आये तो उस प्रवचन को सुन ले ऐसा निवेदन है। पूज्य बहिनश्री का जहाँ-जहाँ पूज्य `सोगानीजी' के विषय में उल्लेख आया है उसे ब्र. बहनों ने लिख

लिया था उसे यथावत् उपलब्ध दिनांक के साथ दिया गया है।

किसी भी धर्मात्मा के प्रति बहुमान में हमारी कोई कमी न रहे व सर्व धर्मात्माओं के प्रति बहुमान में उत्तरोत्तर वृद्धि हो इस निहित हेतु से प्रकाशित की जा रही ऐसी पुस्तिका आगे भी प्रकाशित करने की भावना है जो कि पूज्य भाईश्री की ही देन है।

प्रस्तुत पुस्तिका की तृतीयावृत्ति के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि का साभार विवरण अन्यत्र दिया गया है। इस कार्य में जिन-जिन मुमुक्षुओं का सहकार मिला है उन सबके हम आभारी हैं। इस पुस्तिका के सुंदर टाइप सेटिंग के लिये `पूजा इम्प्रेशन्स' और सुंदर मुद्रण कार्य के लिये `भगवती ऑफसेट' के भी हम आभारी हैं।

वीतराग सत् साहित्य का प्रकाशन कार्य अतिशय जिम्मेवारी का है अतः इस कार्य में मन-वचन-काया से किसी भी प्रकार की क्षति या अंगभीरता का सेवन हुआ हो तो शुद्ध अंतःकरण से वीतराग देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमा याचना करते हैं। पाठक वर्ग से भी हमारा निवेदन है कि, अगर कहीं पर हमारी क्षति नज़र में आये तो बिना संकोच हमें सूचित करें। हम उनके आभारी रहेंगे। हमारी यथाशक्ति हमने इसका हिन्दी अनुवाद किया है इसमें भी अगंभीरतावश कोई क्षति रही हो तो हमें बतलायें, जिससे की भविष्य में उस भूल का पुनरावर्तन न हो।

अंततः इस पुस्तिका के स्वाध्याय से सर्व जीव मुक्ति के पंथ को प्राप्त कर शाश्वत सुख-शांति को प्राप्त हो यही भावना।

दि. ३१-१२-२००७
(कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन)

ट्रस्टीगण
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

‘धन्य पुरुषार्थी !!’

अनुक्रमणिका

पूज्य गुरुदेवश्री के हृदयोद्गार ०१

पूज्य बहिनश्री चंपाबहन के हृदयोद्गार २५

पूज्य भाईश्री शशीभाई के हृदयोद्गार ३३

पूज्य सोगानीजी सम्बन्धित प्रेरणादायक बातें . . ५४

पूज्य सोगानीजी के सम्बन्ध में ७२

`धन्य पुरुषार्थी !!' पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर ५,०००/-

पूज्य गुरुदेवश्रीके महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई पैदा नहीं हुआ था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नई यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ - धर्मात्माएँ हुए, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

इस पुस्तक का किसी भी प्रकार से अविनय या अशातना न हो इसका लक्ष्य रहें।

ॐ

श्री परमात्मने नमः

‘धन्य पुरुषार्थी!!’

अध्यात्मयुगस्रृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी सम्बन्धित प्रमोदपूर्ण हृदयोद्‌गार !

...मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान किसका करे ? और किससे कार्य करवाये ? आ..हा..हा...! चैतन्यहीरा ! अनन्त गुणों के पहलू सहित (है), प्रभु ! आ..हा...! वास्तव में तो उसके-जीव के परिणाम जो हो रहे हैं वे भी त्रिकाली ध्रुव से नहीं। आ..हा..हा...! तो पर के परिणाम जीव करे (यह कैसे बने ?)

द्रव्य पर्याय का दाता नहीं और कर्ता (भी) नहीं। आ..हा..हा...! भाई ने-`निहालभाई'ने नहीं लिखा ? `परिणाम परिणमित हो चुके फिर भी मैं वैसा का वैसा रह गया।लोगों को निश्चयाभास जैसा लगे। लोगों को खबर नहीं। परिणाम की दृष्टि ध्रुव पर है और वे परिणाम बदल गये और मैं तो वैसा का वैसा (रह गया)। मैं माने ध्रुव। आ..हा..हा...! (लोगों को) यह नहीं बैठता। `**निहालभाई' की बात परम सत्य है।** लेकिन निश्चयाभास है ऐसा कहकर निकाल दिया !

(कल एक मुमुक्षु) देखने आये थे (वे कहते थे कि), `आप उन्हें निश्चयाभासी घोषित करे तो हम देखने आये।' कहिये, ठीक ! (दो जन आये और कहा कि) `निहालभाई' को आप निश्चयाभासी घोषित कीजिये तो हम इस मेले में आ सकते हैं।' अरे...! आओ-नहीं आओ, हमें क्या काम है ? तुमको क्या मतलब है ? वे जहाँ थे वहाँ थे। आ..हा..हा...!

(श्री समाधितंत्र श्लोक-५७-५८, दि. २६-६-७५, प्र.-७२, २५:२४ मिनट पर)

[]

(ज्ञानी को) वीतरागस्वभाव की दृष्टि है इतनी वीतरागता तो दृष्टि की अपेक्षा है, अस्थिरता की अपेक्षा ज्ञानी को राग आता है। आ..हा...! शरीर आदि सजाने का राग आता है। नहाते हैं, सजते हैं। `निहालभाई' में तो ऐसा आता है (कि), देहत्याग पूर्व नहाये थे। `निहालभाई' ! आता है ? पुस्तक में आया है। देहत्याग की तैयारी थी इसके पहले स्नान किया।

आता है, ऐसा विकल्प आता है। आता है ? (श्रोता :- प्रस्तावना में आता है।) हाँ, प्रस्तावना में। है न ? आता है, ऐसा विकल्प होता है। आ..हा..हा...! परन्तु वे उसे दोष जानते हैं। लाभ के लिये करता हूँ, ऐसा नहीं। आ..हा..हा...! करता तो नहीं हूँ लेकिन होता है, वह भी लाभ हेतु नहीं। आ..हा..हा...! अस्थिरतावश शरीर, वाणी, आहार और पानी की अनुकूलता का राग आता है परन्तु अभिप्राय में उसका स्वीकार नहीं। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-६१-६२, दि. ३०-६-७५, प्र.-७६, २९:४५ मिनट पर)

□

जैसे पहना हुआ वस्त्र जीर्ण होनेपर समझदार मनुष्य अपने शरीर को जीर्ण हुआ नहीं मानता वैसे अंतरात्मा शरीर जीर्ण होनेपर अपने आत्मा को जीर्ण हुआ नहीं मानता। आहा..हा...! अरे...! पर्याय में पूर्ण हीन (पर्याय) हुई-बहुत हीन (पर्याय हुई) तो इससे ध्रुव हीन हुआ ऐसा मानेगा क्या ? आ..हा..हा...! इसके बजाय शरीर की जीर्णता से आत्मा की जीर्णता (हुई) सो बात कहाँ है ? आ..हा..हा...! धर्मी की दृष्टि ! शरीर पर लक्ष ही कहाँ है ? चाहे लोमड़ी काटे और टुकड़े कर दे (लेकिन) धर्मात्मा की दृष्टि तो आत्मा पर पड़ी है। लोमड़ी शरीर के टुकड़े कर दे तो भी उस वक्त अंदर में तो आनंद का वेदन है ! वह (-लोमड़ी) काटे, और यहाँ आनंद पुष्ट हो ! आ..हा..हा...! उसे और इसे क्या संबंध है ? आ..हा..हा...!

वह टुकड़ा अलग हो, यहाँ आनंद की पुष्टि हो ! आ..हा..हा...! चीज ही अलग है। भाई ने लिखा है न ? `निहालभाई' ! कि, धधकती हुई करोड़ों सुई शरीर में चुभे तो भी ज्ञानी को इसकी चिंता नहीं, क्योंकि उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। है न ? `निहालभाई' में है। धर्मी तो हर समय तैयार ! शरीर में धधकती करोड़ों सुई लगायें तो भी उसे मैं स्पर्शता तक नहीं, उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। आ..हा..हा...! जिससे-शरीर (से) मेरा अत्यंत अभाव (है), उसमें-शरीर में हो इससे मुझे क्या ? आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-६३-६५, दि. ०२-०७-७५, प्र.-७८, २९:१० मिनट पर)

□

...पर्याय में परिणमन है सो तो पर्याय का है। `निहालभाई' में एक जगह आया है कि, परिणामी-अपरिणामी कहे तो... परिणामी-परिणाम ! आता है एक जगह। `अपरिणामी-परिणाम' (कहिये)। जोर (वहाँ है न) ! परिणाम स्वयं अपरिणामी का लक्ष करता है, इसलिये `अपरिणामी-परिणाम'। (आता) है ? इस तरफ है। आ..हा...! वस्तुस्थिति है। क्योंकि अपरिणामी को परिणाम ने जब जाना तब `अपरिणामी-परिणाम' वैसे ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई ! और सर्वज्ञपंथ में ही ऐसा मार्ग होता है, तीनकाल में अन्य कहीं भी होता नहीं। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-६५-६६ दि. ०३-०७-७५, प्र.-७९, ०९:२० मिनट पर)

...विकल्प उठे वह भी नुकसानकारक है। आ..हा..हा...! भाई ने-`निहालभाई' ने तो यहाँ तक नहीं लिखा ? (कि), `सुननेवाले को नुकसान और सुनानेवाले को (भी) नुकसान। लिखा है ? दोनों को (नुकसान)। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७१-७२, दि. ०९-०७-७५, प्र.-८४, ३४:४५ मिनट पर)

□

...प्रवृत्ति में भी विवेक चाहिये। एक बार तो `निहालभाई'ने पूछा है कि, विवेक क्या ? विवेक को रखो एक ओर ! एक बार ऐसा (कहा) और एक बार ऐसा भी कहा कि, विवेक पहले चाहिये। दो प्रश्न हैं। है, दो प्रश्न हैं। एक जगह विवेक की बात (वैसे कही) है तो दूसरी एक जगह विवेक को स्थापित किया है कि, विवेक आवश्यक है, किन्तु पर्यायबुद्धि नहीं रखनी है, पर्याय पर ज़ोर नहीं देना है, वैसे। है ऐसा एक जगह। कौनसा नंबर है, पता है ? नहीं पता? प्रश्नों में है। किस जगह प्रश्न है पता है ? हमको तो उतना याद नहीं रहता। न्याय याद रहता है। ऐसा कहीं पर आया था, हं ! आ..हा..हा...!

एक का अर्थ ऐसा कि, ऐसा राग होना चाहिये वरना ऐसा होगा या वैसा होगा। अरे...! जो होगा सो होगा। वैसे भी सम्यग्दर्शन में स्वच्छन्दी राग नहीं होता। उन्हें योग की मर्यादा में ही होता है। परन्तु उसका ज़ोर जाना चाहिये वस्तु पर। जो महा-खान है। उस खान पर नज़र करनी चाहिये।

ज़ोर वहाँ जाना चाहिये। पर्याय का विवेक इसके अनुपात में होता है परन्तु ज़ोर पर्याय पर नहीं होना चाहिये। कहीं आता है। दो बोल हैं। एक बोल निकालेंगे तो दूसरा मिल जायेगा। लिख लिया होगा। विवेक का नकार किया है वहाँ भी विवेक का हकार किया है। उसका पन्ना लिखा होगा। है, उसमें बहुत विषय (है)। (समय-४२:१० मिनट पर)

...दो जगह है। देखो ! (बोल) ३५७. देखा ? `**परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिये।**' देखा ? और ६८ वे (बोल में) आता है। वहाँ ना देंगे। `**प्रश्न :- अनुभव होने के बाद परिणाम में मर्यादा आ जाती है न ? विवेक हो जाता है न ?**' ऐसा प्रश्न है। `**उत्तर :- विवेक की बात एकबाजू रखो; एक दफा विवेक को छोड़ दो** ! (**-पर्याय की सावधानी छोड़ दो** !) **परिणाम मात्र ही `मैं' नहीं; `मैं' तो अविचलित खूँटा हूँ; मेरे में क्षणिक अस्तित्त्व है ही नहीं। विवेक के बहाने भी जीव परिणाम में एकत्व करते हैं।**' वहाँ ऐसा कहा और यहाँ पर हाँ कही। अपेक्षा से (बात है)। यहाँ हाँ कही है। देखो ! `**परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिये।**' सहज होना चाहिये ! दोनों जगह निशानी की है, हं ! आ..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७१-७२, दि. ०९-०७-७५, प्र.-८४, ५२:४५ मिनट पर)

□

...जिसने राग और द्वेष को, विषय-कषायरूपी शत्रु को दूर किया है, ऐसे पुरुष को तो उसका आत्मा ही ध्यान के लिये सच्चा अत्यंत निर्मल आसन है। आ..हा..हा...! `निहालभाई' ने एक जगह कहा है न ? कि, मैं तो पालथी लगाकर अंदर बैठ जाता हूँ। भाषा ऐसी सरल कर दी है ! पालथी का अर्थ कि, मै तो अंदर में बैठ जाता हूँ। `पालथी लगाकर' ऐसा (आता) है। (क्या अंदर में) पालथी लगाते होंगे? इसका अर्थ कि, मेरी पर्याय वहाँ थम जाती है। आ..हा..हा...! लोगों को यह विशेष लगे। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। पर्याय को द्रव्य में स्थापित करना, उसमें लीन करना उसका नाम पालथी लगाकर बैठ गया, उसका अर्थ वैसा। आसन लगाया ध्रुव में ! वैसे। ऐसा मार्ग कठिन, भाई !

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७३-७४, दि. ११-०७-७५, प्र.-८६, १२:३५ मिनट पर)

□

आ..हा..हा...! तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनंद भरा है न ! वह कौन कराये और कौन सिखाये ? कि, स्वयं। आ..हा..हा...! मृग की नाभि में कस्तूरी (है) उसे उसकी खबर नहीं। (यहाँ जीव को) पता चलता है तब स्वयं देखता है कि, ओ..हो...! जहाँ मैं खड़ा हूँ सो तो पर्याय है और यह पर्याय जिसकी है वह तो महातत्त्व है ! यह पर्याय उसके आधार पर खड़ी है। है ऐसी भाषा ? यह शब्द `निहालभाई' मैं है। किसीने ऐसा पूछा कि, `यह बात न्याय से दिमाग में बैठती है, परन्तु

अभी भी ध्रुव स्वभाव की तरफ नहीं जाना होता। इसका क्या कारण ?' आता है उसमें ? आता है। कहीं न कहीं आता है जरूर ! बड़ा समुद्र है ! तब कहते हैं कि, जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठती है, विकल्प से-न्याय से (समझ में आती है) वह पर्याय किसी के आधार पर खड़ी है कि नहीं ? समझ में आया ? जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठी वह पर्याय कहाँ है ? किसके आधार पर है? निश्चय से पर्याय ही पर्याय का आधार वह यहाँ नहीं लेना है। पर्याय जिसके आधार पर रहती है वैसा जो ध्रुव (तत्त्व है) उसका लक्ष कर तो तुझे अनुभव होगा। आ..हा..हा...! पर्याय में यदि यह बात तुझे बैठी तो वह पर्याय किसके आधार पर खड़ी है ? यानी कि, इसका उत्पाद् किसके आधार पर है ? किसके आधार पर ? बिना किसी के आधार पर उत्पाद् हुआ क्या ? जिसके आधार पर पर्याय हुई, खड़ी है, मोजूद है उसका आधार ले ! आ..हा..हा...! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म। जीव को करना तो यह है। बाकी सब बातें हैं। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७५-७६, दि. १३-०७-७५, प्र.-८८, ०९:३५ मिनट पर)

□

...तीन लोक के नाथ की वाणी सुनना, वह वाणी परद्रव्य है, आ..हा..हा...! उसे सुनने के लक्ष से तो विकल्प है। फिर भी एक जगह (`निहालभाई'ने) ऐसा कहा है न ? भाई ! आचार्य के शब्दों से आनंद का रस टपकता है। वह किस

अपेक्षा से ? स्वभाव का आश्रय लेकर जो पढ़े, समझे... आ..हा..हा...! उसको वहाँ आनंद झरता है, ऐसा कहना है। वांचन, श्रवण के वक्त भी धर्मी को तो स्वभाव की शुद्धि की वृद्धि होती ही रहती है। आ..हा..हा...! वह (वांचन, श्रवण) के कारण के नहीं। उस वक्त अपनी शुद्धि पर, जोर है न उस पर ? आ..हा..हा...! परिणाम मेरा ध्यान करो तो करो। मैं क्यों करूँ ? आ..हा...! लोगों को कठिन लगे। उसे (-द्रव्य को) जाने कौन ? (तो कहते हैं कि) जानती तो है पर्याय। पर्याय जानती है कि, परिणाम ध्रुव का ध्यान करो तो करो। पर्याय ऐसे जानती है। परन्तु मैं किसका ध्यान करूँ ? `मैं' मतलब `ध्रुव'। आ..हा...! ऐसी अटपटी बातों का समाधान नहीं समझे तो जीव को शांति नहीं मिलती परन्तु अशांति का खदबदाहट हुआ ही करता है। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८-७९, दि. १७-०७-७५, प्र.-९२, ०९:४० मिनट पर)

□

`सोगानी' की दृष्टि का ज़ोर द्रव्य पर बहुत था ! दो जगह लिखा है कि नहीं ? यह हमारी पद्धति-द्रव्यप्रधान कथन है। शुरूआत में है। है न ! है ऐसा एक जगह। (पहले पन्ने पर चर्चा में) देखो ! `**अपनी तो यही दृष्टिप्रधान शैली है।**' वह शैली। उनको कोई उपदेश तो करना नहीं था। उनको कोई दुनिया में राजी हो और लोग इकट्ठे हो ऐसा तो कुछ करना नहीं था। है न ? प्रश्न है कि, `**आप शुद्ध**

पर्याय को दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं या ज्ञान की अपेक्षा से ? उत्तर :- दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं; ज्ञान की अपेक्षा से नहीं।' क्योंकि ज्ञान जानता है ऐसा (कहना है)। दृष्टि में तो भेद नहीं है न ! `**दृष्टि करने के प्रयोजन में भिन्नता का ज़ोर दिये बिना दृष्टि अभेद नहीं होती। इसीलिये दृष्टि की अपेक्षा से ही भिन्न कहते हैं। और अपनी तो यही `दृष्टिप्रधान' शैली है, सो ऐसे ही कहते हैं।**'

(दूसरा) ४३५ है। ४३५ (बोल में) हं ! `(**मुझे**) **द्रव्य का बहुत पक्ष हो गया है...**' (यानी कि) हमारा लक्ष-अधिक ज़ोर वहाँ पर है। `**इसलिये कथन में द्रव्य से** (**द्रव्य की प्रधानता से**) **ही सब बातें आती हैं।**' दो जगह आया न ! (बोल नं.) २ और यह ४३५ वाँ। सो तो यथार्थ है।

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १७-७-७५, प्र.-९२, २५:२० मिनट पर)

□

...प्रभु ! एक समय में परमात्मस्वरूपरूप बिराजमान है ! उसे आत्मा कहते हैं न ? `नियमसार' की ३८ वीं गाथा में लिया न ! नहीं ? यह ध्रुव, अभेद, शुद्ध चैतन्यघन सो आत्मा। पर्याय को वहाँ नहीं ली। आ..हा..हा...! ऐसा जो भगवान पूर्णस्वरूप चैतन्यदल ! वह पर्याय में नहीं आता। भाई ने दृष्टांत दिया है न ? `निहालभाई' ने ! दर्पण का नहीं दिया ? दर्पण का दृष्टांत दिया है। दर्पण की पर्याय में यह सब

भासित होता है। उसका दल जो है वह पर्याय में नहीं आता। आ..हा..हा...! जबकि प्रतिबिंब तो पर्याय में आता है न ? सर्प, कोयला, अग्नि, बर्फ। है तो उसकी पर्याय, वह (स्वयं) नहीं परन्तु उसकी पर्याय में भासित होता है। परन्तु पर्याय में पूरा चैतन्यदल नहीं आया। क्योंकि यह तो पलटती दशा है, जबकि वस्तु तो एकरूप है। आ..हा..हा...! यानी कि, पर्याय में दल नहीं, दल तो दल में है। आ..हा..हा...! ऐसा भेदज्ञान जिसको नहीं है वे बंधते हैं, ऐसा कहते हैं।

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १८-०७-७५, प्र.-९३, १०:४५ मिनट पर)

□

...जब योग की परिपक्व अवस्था होती है यानी कि अंदर स्थिर होता है तब जिसको आत्मबुद्धि का अधिक अभ्यास हुआ है, जिसने आत्मस्वरूप की तीव्र भावना की है। भावना नाम एकाग्रता-ऐसे निश्चल आत्मस्वरूप का अनुभव करनेवाले को... चलित न हो ऐसी स्थिरता जहाँ जमी है। आ..हा..हा...! आनंद की घूँट पर घूँट पीये जाता है। भाई ने दृष्टांत दिया है-गन्ने के रस का ! `निहालभाई' ने ! गन्ना... गन्ना ! तृषा लगी हो (तब) गन्ने का रस जैसे घट... घट... घट... घट... घट... घट... घट... आ..हा..हा...! वैसे अनुभव के काल में गन्ने के रस के माफिक आनंद का घट... घट... (अनुभव होता है)। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १८-०७-७५, प्र.-९३,

४८:०० मिनट पर)

भगवानआत्मा ! एक-एक प्रदेश में पूर्ण अनंत आनंद की खान... खान है पूरी ! ऐसे असंख्य प्रदेश से व्यापक, अतीन्द्रिय आनंद के रस से परिपूर्ण भरा हुआ प्रभु ! उसकी दृष्टि में जब तक जीव नहीं आता तब तक उसका ज्ञान सही नहीं होता और राग से अभावरूप वैराग्य भी उसको नहीं हो सकता। आ..हा...! छः खंड के राज्य में रहा (हो), फिर भी वैरागी होता है। `निहालभाई' ने तो कहा है न ? चक्रवर्ती छः खंड को साधते हैं ? बाद में (क्या लिखा है ?) अखंड को साधते हैं। वे छः खंड को नहीं साधते, अखंड को साधते हैं। आ..हा..हा...! जिसकी दृष्टि में परमात्मा अखंडस्वरूप जब अंदर अनुभव में आ गया... आ..हा..हा...! वे तो अखंड को साधते हैं। बाहर में भले लड़ाई आदि के प्रसंग हो फिर भी अखंड पर ही उनका साधकपना जमा हुआ है। आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-८२-८३, दि. २१-०७-७५, प्र.-९६, १५:४० मिनट पर)

□

...भाई ने तो एक बार नहीं कहा ? `निहालभाई' ने ! कि, सुनना और सुनाना नुकसान का कारण है। दूसरी जगह ऐसा भी कहा कि, अपने स्वलक्ष से यदि आचार्यों के शब्दों का पठन किया जाये तो वहाँ (आनंद) रस की बूँदें टपकती हैं। देखो ! वहाँ ऐसा कहा है ! आ..हा..हा...!

जिज्ञासा :- दो बात विरुद्ध क्यों आयी ?

समाधान :- विरोध नहीं है। जिसको स्वलक्ष (है वह) जो कुछ सुने या करे उस वक्त लक्ष होने के बावजूद भी विकल्प उठता है वह नुकसानकारक है। विकल्प की अपेक्षा लेकर बात की है। जबकि यहाँ स्वभाव के आश्रयपूर्वक बात चलती है इसमें तो वांचन, श्रवण, मनन होनेपर भी स्व के आश्रय के लक्ष से उसकी शुद्धि की वृद्धि होती है। वह विकल्प के कारण बढ़ती है, सुनने से बढ़ती है सो बात नहीं। आ..हा..हा...! ऐसी बात है, भाई ! थोड़ा-सा भी न्याय अगर बदल गया तो पूरी वस्तु बदल जाये ऐसा है।

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-८४-८५, दि. २२-०७-७५, प्र.-९७, २८:१५ मिनट पर)

□

...जैसे शरीर मेरा, राग मेरा (मानता है) वैसे खुला हुआ परलक्षी ज्ञान है वह मेरा - ये सब देहात्मबुद्धि है। समझ में आया ? भाई में - `निहालभाई' में तो एक शब्द है कि, ज्यों-ज्यों क्षयोपशम बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इसका मद बढ़ता जाता है - एक जगह है। अभिमान बढ़ता जाता है कि, मैंने इतना किया... मैंने इतना किया, इतना मुझे आता है, दूसरे की अपेक्षा मेरे में इतनी विशेषता है, ऐसा सूक्ष्मरूप से इसका मद चढ़ जाता है। आ..हा..हा...! समझ में आया ? वह भी देहात्मबुद्धि है। आ..हा..हा...! भाई ! मार्ग बहुत निराला...! आ..हा..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-९३-९४, दि. ०२-०८-७५, प्र.-

१०८, १९:०० मिनट पर)

□

...जो ज्ञात-आत्मा है यानी कि आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन प्रभु ! वह पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि और उघाड की बुद्धि को छोड़कर, परमात्मस्वरूप प्रभु ! पूर्ण परमात्मा भगवान ईश्वर स्वयं ही ! उसका जिसे अंतर्मुख होकर ज्ञान हुआ... आ..हा..हा...! वह (परलक्षी शास्त्रज्ञान) तो बहिर्मुख था। समझ में आया ? आ..हा..हा...! `निहालभाई' में एक शब्द है कि, धारणा करके क्या तुझे दूसरों को दिखाना है ? कि, मुझे कुछ आता है, दूसरों से अधिक मुझे आता है, जवाब देना आता है, ऐसा दिखाना है ? धारणा करके क्या करना है तुझे ? है न, भाई ! उन्हें तो बहुत (अंदर में रहने का) भाव (था)! अब देखिये (लोगोंने) उन्हें नहीं माना ! (किसीने ऐसा कहा कि), `उन्हें आप निश्चयाभासी कहो !' (तो किसी दूसरे ने उसको कहा) `भाई ! तुझे क्या मतलब है दूसरे से ? उनका चाहे जो भी हो।' ऐसा कहा है, कई बार। जबकि वे (-बाहरवाले) कहते हैं न ? कि, `इनको (-`निहालभाई' को) निश्चयाभासी घोषित किजीये तो हम वहाँ आयेंगे।' लेकिन भाई ! तुझे (दूसरे से) क्या मतलब है ? वे लोग यहाँ देखने आये थे, जब हम (यहाँ) नहीं थे। पहले पत्र में तो ऐसा (लिखा था कि), `आप उन्हें निश्चयाभासी घोषित किजीये तो ही हम अभी आयेंगे वरना आप नहीं होंगे तब आयेंगे।' पीछे से आये थे। अरे... भगवान ! क्या है ? भाई ! आ..हा..हा...! जब तुझे परखना नहीं आता

तो तुझे दूसरे से क्या मतलब है ? तुझे परखना आता ही नहीं। समझ में आया ? आ..हा..हा...! ये तो क्या है कि, सम्यक्ज्ञान में (अगले का) जो प्रकार होता है इसका पता चल ही जाता है, छीपा नहीं रहता। आ..हा..हा...!

मुमुक्षु :- एक जगह लिखा है कि, शास्त्र है सो पंडितों का संसार है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, है न ! पंडितों का संसार है। और एक जगह (ऐसा भी) कहा है कि, आप ये जो धारणा से बात करते हो वह हमे तो कागपक्षी जैसी बोली लगती है ! आ..हा..हा...! कौआ जैसे बोलता हो...! आ..हा..हा...! वह आता है, हमें तो नंबर की खबर नहीं। आ..हा...!

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-९३-९४, दि. ०२-०८-७५, प्र.-१०८, २८:१० मिनट पर)

□

...जिसको द्रव्य-वस्तु ही दृष्टि में नहीं आयी, द्रव्य ऐसा है ऐसा भासित नहीं हुआ उसे तीर्थंकरगोत्र का विकल्प हो ही नहीं सकता। आ..हा..हा...! फिर भी तीर्थंकरगोत्र का विकल्प है तो नुकसानकारक। आ..हा..हा...! `निहालभाई' ने लिखा है न (कि), तीर्थंकरगोत्र बाँधने का जो भाव (है) उसे नपुंसक जानते हैं। गुरुदेव ने ऐसा कहा है, ऐसा करके लिखा है। आ..हा..हा...! राग है न ? राग है इतनी नपुंसकता है। आ..हा..हा...! वीर्य तो वह है जो स्वरूप की रचना करे। वीर्य उसे कहते हैं। आ..हा..हा...! शुद्ध स्वरूप की रचना करे

उसे वीर्य कहते हैं, ऐसा ४७ शक्ति में आया है न ? वीर्य किसे कहे ? आत्मा का वीर्य-बल किसे कहे ? कि, जो अपने स्वरूप की शुद्धता की रचना करे। राग की रचना करे वह स्वरूप का वीर्य नहीं। आ..हा..हा...! कायरों के तो कलेजे काँप उठे ऐसी यह बात है। आ..हा..हा...! आत्मार्थी को यह बात प्रतीति में आये ऐसी है। आ..हा..हा...! वादविवाद से इसका अंत नहीं पाया जाता।

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-९६, दि. ०४-०८-७५, प्र.-११०, ५५:१० मिनट पर)

□

अभी दो दिन पहले प्रश्न आया था, `सरदारशहर' ! `बहुत दिनों से मेरी तुच्छ बुद्धि में यह आ रहा है कि ज्ञानी दोष को दोष जानकर हटता है, यह तो आगमप्रमाण है या ज्ञानी दोष का कर्ता-भोक्ता बनकर दुःखी बनता है, यह आगमप्रमाण है ?' ऐसा प्रश्न किया है। ऐसा कहकर यहाँ से समाधान माँगा है। ऐसा लिखा है कि, मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार सत्य तो यह है। मतलब `ज्ञानी को दुःख का कर्तापना-भोक्तापना-दुःख का वेदन नहीं है।' ऐसा कहते हैं। वैसे उसका तो आगमप्रमाण है परन्तु ज्ञानी को दुःख का-रागादि का कर्ता, उसका भोक्ता और वे दुःखी (होते हैं) ऐसा कोई आगमप्रमाण है ? परन्तु उसीमें आगमप्रमाण आ गया।

`दोष से हटता है' ऐसो तो आया न ? ज्ञानी दोष से हटते हैं इसमें इस तरफ का झुकाव है न ? हटते हैं तो

जो है उसमें से हटते हैं कि नहीं है उसमें से हटते हैं? मतलब वह है तो सही न ? राग और द्वेष का अंश कर्तृत्वरूप से ज्ञानी को भी है। कर्तव्यरूप से नहीं - करने लायक है, वैसे नहीं। परन्तु परिणमन करते हैं उसमें तो छट्ठे गुणस्थानवर्ती गणधर को भी महाव्रत के विकल्प के समय कर्तारूप परिणमन है। आ..हा..हा...! ऐसी बातें हैं ! भोक्तारूप से राग है। धर्मी राग को करते हैं और भोगते हैं और इसके दुःख का उन्हें वेदन (भी) है। आ..हा..हा...! राग है सो तो दुःख है।

वह आया है न ! `छः ढाला' में नहीं आया ? `राग आग दहे सदा' `छः ढाला' आती है न ? `राग आग दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' धर्मात्मा गणधर को ! अरे...! तीर्थंकर स्वयं जब छद्मस्थ(दशा में) मुनि हो तब उन्हें भी जो विकल्प उठते हैं वह दुःख है, उस दुःख का वेदन है। आनंद का वेदन स्वभाव के आश्रय से है। वह तो चारित्र अपेक्षा से कहा है कि, दाह है। स्वरूप में रमणता करते हुए वे राग का नाश करते हैं। दाह है। ज्यों अग्नि लकड़ी को जलाती है ऐसा चारित्र राग को जलाता है, नष्ट करता है; परन्तु जो `है' उसे नष्ट करता है न ? परन्तु जब तक वह है तब तक वह क्या चीज है ? जब तक राग है (तब तक दुःख का वेदन है)। समझ में आया ? वह पूछा है। `यह आगमप्रमाण है ?' यह आगमप्रमाण नहीं है, ऐसा उसके ख्याल में है। पहले भी यह प्रश्न बहुत चला था।

उसमें कहा है, दोष का आगमप्रमाण मतलब दोष से हटता है वह आगमप्रमाण है। परन्तु `हटता है' ऐसा जब शब्द पड़ा है तो वहाँ `है', यह तो आ गया। दोष है अभी। तो `है' वह क्या चीज है ? धर्मात्मा-संत को - मुनिओं को - श्रावक को - समकिती को राग (है) वह क्या चीज है ? दुःख है - दुःख का वेदन है। दुःख का वेदन अगर नहीं होता तो पूर्ण आनंद का वेदन होना चाहिये था। मिथ्यादृष्टि को पूर्ण दुःख का वेदन है, केवली को पूर्ण आनंद का वेदन है, साधक को आनंद के साथ थोड़ा दुःख का वेदन है। आ..हा..हा...!

इसका खुलासा कल तो बहुत आया था। **कल का व्याख्यान जिंदगी में नहीं आया था ऐसा कल आया था** !! हरएक कर्म पर बात ली थी। चतुर्थ गुणस्थान में कुछ कर्मबंधन है कि नहीं ? कि, तद्दन अबद्ध है ? तो फिर चतुर्थ गुणस्थान में कर्म बंधते हैं उसका निमित्तत्व क्या चीज है ? वह विभावभाव है - दुःख है। यह बात उन्हें नहीं बैठती। क्योंकि भाई- `निहालभाई'ने ऐसा कहा है न कि, `हमें तो विकल्प भट्ठी जैसा लगता है।' यह (पढ़कर) उन्हें लगा कि, यह क्या ? ऐसा नहीं हो सकता। आ..हा..हा...! परन्तु राग दाह-अग्नि है। चाहे तो शुभराग पंचमहाव्रत का विकल्प हो, (वह) दाह-अग्नि है। `राग आग दहे सदा' राग शांति को जलाता है, जलाता है। आ..हा..हा...! `तातै समामृत सेईये' समभाव-राग से हटकर समामृत (माने) वीतरागभावरूपी अमृत का सेवन कर।

`छः ढाला'में आता है न ?

यहाँ कहते हैं कि, ज्ञानप्रकाश तो स्वद्रव्य को जानता है और पर्याय में जितना कर्म का बंध होता है सो तो अपने कारण से होता है परन्तु उसे निमित्तरूप जो भाव होता है वह जीव की पर्याय का है। चौथे, पाँचवे, छठवें में कर्म है कि नहीं ? बंधता है कि नहीं ? कि, बिलकुल कर्मबंधन रहित चीज है पर्याय में ? द्रव्य में बंधरहित चीज है।

शशीभाई ! यह आपके (संकलित किये हुये `द्रव्यदृष्टि प्रकाश') - पुस्तकमें से यह सब निकाला है - विरोध किया है, देखो ! `लालभाई' और इन्होंने - दोनों ने मिलकर लिखा है कि नहीं ? यह पुस्तक-यह `सोगानी' का `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! दिया है कि नहीं ? दिया है। `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! इन दोनों ने मिलकर बनाया है। ये (`शशीभाई') और `लालचंदभाई'। ये पढ़कर वे (`सरदारशहर'वाले) भड़के ! ये कौन निकला ? कि, हमें दुःख लगता है, भट्ठी लगती है ! अरे... ऐसा ! बापू ! जब तक पर्याय में वीतरागता नहीं तब तक वीतरागीपर्याय का अंश भी है और राग का अंश भी है। एक पर्याय के दो भाग हैं। इसलिये दुःख का वेदन है। क्योंकि बंधन के निमित्तरूप भाव-राग और दोष हो सकते हैं। आ..हा..हा...! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र का बंध हो वह भाव भी दुःखरूप है, बंध का कारण होता है न ? बंध का कारण होता है न ! बंध के कारण से धर्म हो सकता है ?

(`श्री समाधितंत्र' श्लोक-१००, दि. १०-०८-७५, प्र.-

११५, ३४:३० मिनट पर)

□

`चक्रवर्ती छः खंड को नहीं साधते, अखंड को साधते हैं।' `सोगानी' में (`द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में) है न ?

(श्री निहालचंद्रजी सोगानी ने) यहाँ (सोनगढ़ में) समकित पाया था। यहाँ हमारे पास आये। अन्य का - योगी-जोगी - सभी का अभ्यास बहुत किया। शास्त्र का अभ्यास करते-करते भी कहीं भी (आत्मा का) पता न लगा, तो यहाँ आये। आये तो (मैं ने) इतना कहा : भाई ! ये विकल्प, जो दया-दान आदि के उठते हैं उनसे प्रभु तो अंदर भिन्न है। आहाहा ! सोगानी। उनका `द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! ...यहाँ कमरे में, यहाँ रसोईघर में (-समिति के कमरे में) आत्मध्यान में समकित हुआ। (मैं ने) इतना कहा कि : `राग से भिन्न `प्रभु' अंदर है।' तो पूरी रात - शाम से लेकर सुबह तक ध्यान लगाया। राग से भिन्न, राग से - विकल्प से भिन्न करते-करते सुबह होने से पहले निर्विकल्प सम्यग्दर्शन लेकर उठे ! बहुत शक्ति थी... बहुत ! आखिर में शांति से देह छोड़कर स्वर्ग में चले गये।

(`श्री समयसार' गाथा-३२०, दि. ३०-०७-७९, `प्रवचन नवनीत'-भाग-१, पन्ना-२३४)

□

यह तो सुबह थोड़ा विचार आया था। भाई का - `सोगानी' का ! `पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो। मैं किसका करूँ ?'

आता है उसमें ? आ..हा..हा...! `सोगानी' थे, `कलकत्ता' ! `निहालचंद्र सोगानी' ! यहाँ आये, बहुत वांचन था। (उनका) लड़का पैसेवाला है, बहुत पैसा है। (`सोगानी' ने) बहुत वांचन किया था, शास्त्र अभ्यास किया था। बहुत से साधु-जोगी को मिले थे, जैन के साधु को (मिले थे)। (फिर) यहाँ आये (तो हमने) इतना कहा, प्रभु ! यह राग का जो विकल्प उठता है न, उससे भगवान अंदर भिन्न है। आ..हा..हा...! ऐसे ही विचार में रातभर घोलन किया, (सुबह होते ही) निर्विकल्प ध्यान होकर सम्यग्दर्शन (लेकर) उठ गये। उसमें लिखा है। है ? आज सबेरे याद आया था। (पुस्तक में) आगे लिखा है, नहीं तो जल्दी मिले भी नहीं।

(२७९ बोल है) `**(अभिप्राय की) ज़रा-सी भूल,...**' (यानी कि), राग मेरा है और पर्याय मेरी है, इतना भी हो तो बड़ी भूल है। `**पर्याय' ध्यान करनेवाली है,...**' हिन्दी है। यह पर्याय जो वर्तमान ज्ञान की दशा है, वह ध्यान करनेवाली (है)। (अर्थात्) वह मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव हूँ। आ..हा..हा...! `**पर्याय' ध्यान करनेवाली है,...**' आ..हा..हा...! राग नहीं, शरीर नहीं, पर्याय ध्रुव नहीं। ध्रुव का ध्यान करनेवाली पर्याय है। अरे... अरे...! ऐसी बातें हैं ! कभी सुनी न हो। आ..हा...!

`**पर्याय' ध्यान करनेवाली है, और `मैं' तो ध्यान की विषयभूत वस्तु हूँ;...**' पर्याय ध्यान करो परन्तु मैं तो पर्याय (का) जो ध्यान का विषय है वह मैं त्रिकाली वस्तु हूँ। आ..हा..हा...! `**पर्याय `मेरा' ध्यान करती है, `मैं' ध्यान**

करनेवाला नहीं हूँ।' आ..हा..हा...! पढ़ा है ? आ..हा...! शरीर, वाणी, मन तो जड़-पर हैं। राग-दया, दान, हिंसा (का) विकल्प वह तो विकार है। परन्तु विकार बिना की यहाँ जो पर्याय है, वह पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव-अनंत गुण का पिंड प्रभु ध्रुव हूँ। आ..हा..हा...!

आ..हा..हा...! पर्याय ध्यान करे तो करो ! मैं तो अनंत आनंद का कंद प्रभु हूँ। आ..हा..हा...! `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' मिला है कि नहीं ? आ..हा..हा...!

`**(मैं' ध्यान करूँ. इस बात में; और `मैं' ध्यान करनेवाला नहीं।) `मैं तो ध्यान का विषय हूँ' - इस बात में ज़रा सा फेर लगता है; परन्तु है रात-दिन जितना बड़ा फेर। (एक में पर्यायदृष्टि रहती है जबकि दूसरे में द्रव्यदृष्टि होती है, इतना बड़ा फेर है)।**' मैं ध्यान करनेवाला नहीं, मैं तो ध्यान का विषय हूँ। आ..हा..हा...! ध्यान करनेवाला मैं और ध्यान करने का विषय मैं - दोनों में फर्क है। ऐसा कहते हैं। एक पर्यायबुद्धि है, एक द्रव्यबुद्धि है। इतना फर्क है।

(पूज्य `बहिनश्री के वचनामृत', बोल-३३४-३३६, प्र. १२५, दि. २०-१०-७८, ४७:०० मिनट पर)

□

...मुनिराज को, श्रावक को और समकिती को ज्ञातृधारा से राग विरुद्ध है, वह आकुलता की धारा (है)। आ..हा..हा...! है ? आकुलतारूप से-दुःखरूप से वेदन होता है। आ..हा..हा...!

भाई ने लिखा था, `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' है न ? पढ़ा है ? भैया ! `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! `सोगानी'... `सोगानी' ! `सोगानी' का है, `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! उसमें यह लिखा है कि, ज्ञानी-धर्मी को भी राग-दुःख का वेदन है। आ..हा..हा...!

(पूज्य `बहिनश्री के वचनामृत' बोल-३७८, दि. १३-११-७८, प्र. १४९, २५:३० मिनट पर)

□

...भाई में नहीं आता है ? `सोगानी' में ! `सोगानी' में एक लेख है कि, `महाराज ने कहा सो मैंने किया है। अब मुझे दूसरे को कुछ कहना (नहीं है)।' (किसी ने ऐसा कहा कि), `ये आप (गुरुदेवश्री को) कहो।' (तो उन्होंने कहा) `यह कोई मेरा स्वभाव नहीं। ऐसा मेरा भाव नहीं।' है न ? उसमें कहीं आता है। `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में है न ? भाई ! कि, `आप महाराज को जाकर कहिये तो सही !' (तो कहा कि), `देखो भाई ! वह तो मेरे स्वभाव में है नहीं। ऐसा लक्ष करके जाऊँ सो मेरे (स्वभाव में) नहीं है।' आ..हा..हा...! आता है कहीं पर, `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में !

जिज्ञासा :- जाना चाहिये कि नहीं जाना चाहिये ?

समाधान :- जाने, नहीं जाने की बात ही कहाँ है ? खुद ने तो जो जाना सो जाना। उसे अब दूसरों को बताकर क्या काम है कि, मैं जानता हूँ !

श्रोता :- गुरु का उपकार मानने तो जाना चाहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपकार में तो व्यवहार विकल्प आता

है। इसलिये वह तो कहा न कि, अंदर में हुआ तब निमित्त का उपकार है ऐसा कहने में आता है।

(पूज्य `बहिनश्री के वचनामृत' बोल-४२८, दि. ३१-०१-७९, प्र. १७९, ३६:१० मिनट पर)

□

`सोगानी' का पुस्तक है... `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! (उनमें) बहुत शक्ति थी। आत्मज्ञान हुआ था। यहीं... इसी गाँव में...! पहले साधु-बावा का बहुत परिचय किया था। यम, नियम, ध्यान... (सब किया था)। फिर यहाँ आये (तो हमने) इतना कहा - `भैया ! ये विकल्प ऊठता है न ! राग ! चाहे तो दया, दान का हो ! ये सब राग से अंदर प्रभु भिन्न है !' ऐसा कहा और ध्यान में बैठे ! अंदर में घोलन करते.. करते... करते... राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव यहाँ समिति में हुआ था। बाद में सारी जिंदगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्ग में चले गये ! आहा..हा...! बहुत शक्ति थी ! `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' है न ! उसमें बहुत है ! ...वहाँ से (स्वर्ग से) निकलकर बाद में दूसरे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष हो जायेगा ! ...वहाँ स्वर्ग में भी आत्मा में ठरते हैं। परंतु थोड़ा राग है तो मनुष्यभव पाकर, केवलज्ञान पाकर, राग का नाश होकर मुक्ति होगी !!

(श्री `समयसार कलश टीका' कलश-२१६, दि. २५-२-७८, प्रवचन नं. २४१)

□

प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबहन के पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी सम्बन्धित हृदयोद्गार

प्रश्न :- `निहालभाई' कहते हैं कि, विचार कोई साधन नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, उसमें प्रसरकर बैठ जा। तो यहाँ वस्तु प्रत्यक्ष है माने क्या ?

उत्तर :- वस्तु तो प्रत्यक्ष ही है न... तुम स्वयं ही हो। विचार प्रथम होते हैं जरूर, जो विचार वस्तु का निर्णय करने के लिये, प्रमाण-नय आदि के विचार होते हैं परन्तु वे साधन नहीं और विचारों में अटकता रहे तो वस्तु प्राप्त नहीं होती।

□

`निहालभाई' कहते हैं कि, `पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करुँ ?' यह बात द्रव्य को लक्ष में रखकर की है, अपनी धुन की बात कही है। द्रव्यदृष्टि का बल आता है वह वेदन में आता है।

□

`श्रीमद्' कहते हैं कि, आँख से रेत उठवाना वह स्वभाव

से विभाव कराने के बराबर है और `निहालभाई'ने (कहा कि) स्वभावमें से बाहर निकलना वह भट्ठी लगती है। दोनों में एक ही भाव है। `भट्ठी जैसा कहना' वह `आँख से रेत उठवाने' जैसा है। भाषा की कथन पद्धति अलग-अलग है।

□

प्रश्न :- `वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम' इसमें तो विस्तुविचार से अनुभव होता है ऐसा कहा जबकि, `निहालभाई' विचार की मना करते हैं तो क्या समझना ?

उत्तर :- यहाँ भी `मन पावे विश्राम' ऐसा लिया है न? अर्थात् विचार से मन छूटता है तब अनुभव होता है। विचार से अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है तब मन भी छूट जाता है तो सिर्फ विचार करने से वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है ? मन से वस्तु उस पार है।

□

प्रश्न :- `श्रीमद्जी' में आता है कि, `आत्मभ्रांति सम रोग नहि... औषध विचार ध्यान' इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- हाँ, आता है कि, प्रथम भूमिका में विचार होता तो है परन्तु वह साधन नहीं है। `निहालभाई' कहते हैं कि, अन्दर में प्रसर जा। स्व में प्रसर जाना वही विधि और कला है। प्राथमिक भूमिका में सब आता है, होता है बाद में छूट जाता है। (दि. १२-४-७२)

□

प्रश्न :- `निहालभाई' कहते हैं कि, `ज्ञानी छः खंड को नहीं लेकिन अखंड को साधते हैं।' इसका मतलब क्या ?

उत्तर :- ज्ञानी की अखंड पर दृष्टि कायम रहती है। चाहे किसी भी कार्य में बाहर लगे हो फिर भी दृष्टि तो अखंड पर पड़ी है। अखंड पर दृष्टि न रहे तो आत्मदृष्टि रहे नहीं। दृष्टि अखंड पर है इसलिये छः खंड को नहीं अपितु अखंड को साधते हैं, ऐसा कहा है। लड़ाई के समय भेदज्ञान की परिणति चालू ही रहती है। दिखता भले ही हो कि, छः खंड साधते हैं, राज-काज में प्रवृत्ति है परन्तु उस वक्त भी अखंड को ही साधते हैं। (दि. २९-४-७२)

प्रश्न :- `निहालभाई' कहते हैं परिणति प्रवेश करती, रमती, उघड़ती है, इसका मतलब क्या ?

उत्तर :- यह तो परिणाम अंदर जाये उसकी बात है। परिणति अंदर जाती है तब उघड़ती जाती है। रमती जाती है मतलब स्वरूप में रमणता होती है। और प्रवेश करना मतलब `सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व' (इस प्रकार) प्रवेश होनेपर सर्व गुणों की निर्मल पर्याय सम्यक्रूप होती है।

(दि. २९-७-७४)

प्रश्न :- `निहालभाई' ने कहा कि, देव-शास्त्र-गुरु सब पर हैं, पर हैं माने क्या ?

उत्तर :- देव-गुर-शास्त्र पर हैं - उसमें सर्वस्वता नहीं है। अपने चैतन्य की सर्वस्वता है। किसी न किसी प्रकार

की धुन होगी सो कहा है। उन्हें इस प्रकार की धुन रहती थी। `प्रवचनसार' में आचार्यदेव को केवलज्ञान की कैसी धुन है ! और क्षयोपशमज्ञान की निंदा की है। `समयसार' में आचार्यदेव को ज्ञायकभाव की धुन है। `नियमसार' में परमपारिणामिकभाव की धुन है।

प्रश्न :- `निहालभाई' में आता है कि, पर्याय में खड़े रहकर विचार मत कर, अंदर में जा। तो इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- तू अंदर में जा, पर्याय में खड़े रहकर विचार करता रहा तो अंदर नहीं जा सकेगा, तेरी दृष्टि को पलट, पुरुषार्थ करके द्रव्य को पकड़ ले।

`निहालभाई' ने तो तत्त्व की बात एकदम स्पष्टरूप से खुल्ली कह दी है। शुभभाव में, भक्ति में, क्रिया में इससे लाभ माने ऐसा काल नहीं रहा। अभी तो कोई पुण्य से धर्म नहीं मानता। क्रियाकांड धर्म का साधन नहीं है। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रताप से तत्त्व की धुन जमी है।

(दि. ४-९-७४)

प्रश्न :- पूज्य `निहालभाई' कहते हैं कि, षट् आवश्यक नहीं परन्तु एक ही आवश्यक है।

उत्तर :- क्रियाकांड, उपवास, व्रत, तप इत्यादि से सामान्य जीव मानते हैं कि, इससे (धर्म) हो गया, तो वह बात झूठ

है। आवश्यक एक है इसकी उन्होंने अपनी धुन में संधि की है। सब किया इसलिये ज्यादा लाभ हुआ वैसा नहीं है। अंदर में यदि कुछ नहीं हुआ और शास्त्र स्वाध्याय आदि करे तो इससे नुकसान नहीं है परन्तु अपनी मान्यता ऐसी हो जाय कि, कुछ कर लिया तो नुकसान है। कुछ होता नहीं यह सोचकर सब छोड़ दे तो यह गलत है, वास्तव में तो अंदर (में) करना है। पूज्य गुरुदेवश्री ने भेदज्ञान का मार्ग स्पष्ट किया है। अभी तो भेदज्ञान... भेदज्ञान... इसकी समझ का काल आया है।

□

की खोज करेगा, परन्तु जिसको जिज्ञासा नहीं है वह मार्ग खोजनेवाला नहीं है। जिसको वेदन रहता हो उसे मार्ग मिलेगा। परन्तु जो आकुल-व्याकुल होता हो उसको सब पहलू से समझना होगा। `निहालभाई' ने तो अपनी धुन की बात कही है। उसमें द्रव्यदृष्टि का बल आता है। खुद को कोई अन्य प्रसंग नहीं था इसलिये जो अपना घोलन था वही आया है। **उनकी बात चरमसीमा की है।** हमें तो सब पूछते हैं कि, कैसे करें ? क्या करें ? उसका जवाब देते हैं।

□

`निहालभाई' ने वांचन, श्रवणादि से कोई कृतकृत्यता नहीं होगी इसलिये अंदर जा' इसमें अपनी भावना प्रकट की है। हमें भी कोई प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाह्य प्रवृत्ति रुचती नहीं है। परन्तु अंदर की बातें सबको थोड़ी कही जाती है ? वेदन में शुभराग दुःखरूप लगता है। बाहर आना वह बोझा

लगता है। विकल्प की प्रवृत्ति में जुड़ना तो बहुत मुश्किल से होता है।

□

प्रश्न :- `निहालभाई' ने शुभभाव को भट्ठी जैसा कहा है न ?

उत्तर :- हाँ, अंदर शुद्ध परिणति का वेदन हो, शुभभाव आते हो, प्रवृत्ति सुहाती न हो, बोलना सुहाता न हो, बाहर में जुड़े हुए दिखे, परन्तु अंदर में तो भट्ठी-सा लगता है। पंच परमेष्ठी के गुणों की महिमा आती है, उस वक्त उसमें शुभभाव है वह विषकुंभ है। `अमृतचंद्राचार्यदेव' ने जिसे ज़हर, विष्टा, विषकुंभ कहा उसीको यहाँ भट्ठी कहा। ज्ञानी को अंदर में स्वभाव की महिमा और आनंद का वेदन ऊर्ध्व रहता है। परन्तु साधक है इसलिये बाधकभाव भी आता है तो उन्हें बाधकभाव भट्ठी-सा लगता है, ज़हर-सा लगता है। भट्ठी-सा लगे फिर इसके समीप कौन खड़ा रहे ? इसलिये उनकी परिणति स्वभाव की ओर दौड़ लगाती है। एक तरफ भट्ठी हो व एक तरफ बर्फ का ढेर हो और बीच में कोई खड़ा हो तो वह बर्फ की ओर कैसा दौड़ता है ! वैसे आनंद का सागर जिसने देखा उसकी परिणति द्रव्य की ओर दौड़ती है। ज्ञायकस्वभाव को ऊर्ध्व-ऊर्ध्व रखती है।

□

प्रश्न :- `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में आता है न `ध्रुव में बैठ जा' - इसमें क्या कहना है ?

उत्तर :- पहले तो कौन-सी अपेक्षा है यह समझ लेना, किसके लिये है ? जिसका भेदज्ञान का रस वृद्धिगत होता हो वह शुभ का रस तोड़कर ध्रुव में बैठ जायेगा। परन्तु जो (अभी) वांचन-विचार भी नहीं करता है वह यदि `ध्रुव हूँ... ध्रुव हूँ' ऐसा (विकल्प) करके बैठा रहेगा तो वह ध्रुव में कैसे बैठ पायेगा ? यदि सिर्फ ध्रुव के विचार न चलते हो तो तत्त्वश्रवण-वांचन-मनन के द्वारा वस्तुस्वभाव का निर्णय कर।

(दि. ११-१०-७४)

❑

`निहालभाई' की कथन शैली में भाषा कड़क है परंतु वस्तुस्थिति तो बराबर कही है। वे कैसे दिखते थे, किसीको खास परिचय नहीं था और बोलते भी कम थे इसलिये दूसरों को बाहर से ख्याल नहीं आवे। उनकी अंतर की परिणति निराली थी। जीव के अंतरंग परिणामों को बाहर से नहीं नापा जा सकता। उन्होंने वस्तुस्थिति सत्य कही है। मार्ग सत्य कहा है जिसे ग्रहण करना चाहिये।

`द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में कहा है न...! `पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, में किसका ध्यान करुँ ?' यह ठीक कहा है। द्रव्य को कहाँ ध्यान करना है ? वास्तविक स्थिति वस्तु की यही है, जैसी है वैसी कहते हैं। किसीको भाषा कड़क लगे तो क्या हुआ ? अंतरंग परिणति तो निराली ही थी।

❑

प्रश्न :- `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में अपरिणामी... अपरिणामी... यह शब्द बारम्बार आता है तो उसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- उन्हें परिणामी कहकर `पूरा ज्ञायक' ऐसा कहना है। कहने का प्रकार सबका अलग-अलग होता है। `समयसार' में `अखंड ज्ञायक' कहा उसीको यहाँ `अपरिणामी' कहा है। यह गुण है, यह पर्याय है ऐसे भेद में क्यों अटकता है ? अभेद में जा, भेद में मत अटक। यदि भेद में अटक गया तो अभेद में नहीं जा सकेगा। अतः अपरिणामी का लक्ष कर। वहाँ स्थिर हो जा ! वहाँ प्रसर जा ! अपरिणामी मतलब कूटस्थ नहीं, परिणमन तो होता रहेगा परंतु तू निष्क्रिय पर दृष्टि दे ! अभेद का ज़ोर प्रगट कर !

जैसे समुद्र की तरंग को न देखकर सतह पर दृष्टि दे। तरंग तो उछलते ही रहेंगे उसके सामने क्यों देखते हो ? वैसे अनंतगुणों की एकरूप सतह जो ध्रुव - अपरिणामी स्थिर द्रव्य है वहाँ दृष्टि को स्थापित कर ! परिणमन तो चलता ही रहेगा। परिणाम गौण हो जाते हैं, शून्य नहीं हो जाते हैं। अतः `अपरिणामी' पर दृष्टि दे ऐसा कहा है।

`नियमसार' में पारिणामिकभाव पर दृष्टि दे ऐसा आता है उसीको यहाँ `अपरिणामी' कहा है। उन्हें `अपरिणामी' की धुन थी इसलिये वह शब्द आया है। निष्क्रिय का मतलब भी अपरिणामी है। `समयसार' में `ज्ञायक' पर दृष्टि देने से परिणाम नहीं दिखते। ज्ञायक कहो, पारिणामिकभाव कहो, चाहे अपरिणामी कहो सब एकार्थ ही है। `पूज्य गुरुदेवश्री' को भी ज्ञायक की धुन बहुत थी। मैं भी सबको यही कहती हूँ कि ज्ञायक को पहचानो। (दि. ३-१२-७५)

❑

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी के प्रति प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार

`सोगानीजी' का दृष्टांत देखा जाये तो यह विचारणीय है कि, कहाँ स्वयं `अजमेर' के दिगम्बर संप्रदाय में थे और उनकी संप्रदाय की मानी हुई क्रिया करते थे। पूजा के पीछे लगे तो छः-छः घंटे पूजा करे, शास्त्र पढ़े तो पूरे दिन शास्त्र पढ़े, ध्यान करे तो पूरा दिन ध्यान में लगे रहे ! पात्रता बहुत तैयार हुई परन्तु वहाँ कोई निमित्त नहीं था। एक `आत्मधर्म' हाथ में आया। `षट् आवश्यक नहीं परन्तु एक ही आवश्यक है।' (यह पढ़कर) चोंट लगी।

उनके वचनों में `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' का जो ६४५वाँ बोल है उसमें एक बात ध्यान खींचे ऐसी है। वे बारंबार ऐसा कहते हैं कि, यह बात सुनते ही चोंट लगनी चाहिये। ऐसा वे क्यों कहते हैं ? (क्योंकि) खुद को जब यह बात पहले-पहल मिली तब उन्हें चोंट लगी थी। कब जीव को चोंट लगती है ? कि, उसकी पात्रता तैयार हुई हो और दर्शनमोह

का रस पतला हुआ हो तब चोंट लगती है वरना दर्शनमोह की रज़ाई ओढ़ी हो (उसे) चाहे कितनी भी बातें आये (तो भी) उसका कोई असर नहीं होता, ऐसा है।

मुमुक्षु :- `आत्मधर्म' तो बहुत लोगों ने पढ़ा होगा।

पूज्य भाईश्री :- लाखों लोगों ने पढ़ा है। लाखों प्रकाशित हो चुके और लाखों लोगों ने पढ़ा है, (परन्तु इन्हें) चोंट लगी। पहले-पहल पढ़ा और चोंट लगी। `आत्मधर्म' के मुखपृष्ठ पर पूज्य गुरुदेवश्री का फोटो था उसे अर्घ चढ़ाया ! अर्घ तो पूजा का अंग है। क्या है ? अर्घ तो पूजा का अंग है। यहाँ तो अभी पुस्तक का पन्ना है, साक्षात् भी नहीं। पुस्तक का पन्ना है। इतना तो बहुमान आया है कि, उसी वक्त अर्घ चढ़ाया है !!

मुमुक्षु :- एक आवश्यक है ऐसा कहने के पीछे क्या आशय है ?

समाधान :- एक आवश्यक माने एक आत्मा में अंतर्मुख होना वह एक ही अवश्य कर्तव्य है। आवश्यक का अर्थ होता है - अवश्य करने योग्य। `क' माने करने योग्य। आवश्यक माने अवश्य। तो अवश्य करने लायक क्या है ? कि, अंतर्मुख होकर आत्मा में अभेद रहना यह एक ही आवश्यक है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि धर्म - यह एक ही आवश्यक है। छः प्रकार के आवश्यक तो व्यवहार में जाते हैं।

ये छः प्रकार के छः विकल्प वह उनके लिये बोझ था। क्या है ? मूल में विकल्प से थके हुए थे कि, ये अष्ट प्रकारी पूजा और छः प्रकार के आवश्यक - ये सब विकल्प

मुझे नहीं पुसाते। यदि कोई विकल्परहित चीज हो और उसमें निर्विकल्प भाव से अंदर रहा जाता हो तो ये विकल्प करना पुसाता नहीं है और करने नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वे आये थे और ठीक उसी समय यह बात मिल गई। अंदर से इतना स्पष्ट नहीं होता हो, भाव ऐसा रहता हो फिर भी स्पष्टता नहीं होती हो तब कोई कहनेवाला मिले तो जैसे रास्ते का दरवाजा किसीने खोल दिया हो ऐसा लगे ! जैसे कि, अरे...! मैं जिसकी खोज़ कर रहा था यह बात तो इन्होंने की है ! ये तो सीधा रास्ता बताते हैं।

उस वक्त जो अर्घ चढ़ाया उसमें बहुत गहरी बात है। छिछले विचार में वह समझ में नहीं आ सकता। बहुत गहरी बात है। उस वक्त मुमुक्षुजीव को ऐसा लगता है कि, मुझे मेरे तारणहार मिल गये और मैं तिर गया !! दोनों बात उसको दिखती है। मैं तिर गया ऐसा दिखता है ! तारणहार सामने हैं और मैं तिर गया, बस ! स्वाहा करके अर्घ चढ़ा दिया। वहाँ अर्घ स्वाहा नहीं किया, पूरे संसार को उन्होंने स्वाहा कर दिया !! ऐसा है।

...वह जो अर्घ चढ़ाया उसमें संकेत है। तब उन्हें गुरुदेवश्री की प्रतीति आ गई, उस वक्त विश्वास आ गया। वरना पहले-पहल सुने और भावभासन कहाँ से हो जाये ? मूल दिगम्बर ! पहले-पहल `सोनगढ़' आये और व्याख्यान सुना और भावभासन में आ गये हैं। मतलब बात उन्हें वहाँ (`अजमेर' में) चोंट कर गई थी, प्रत्यक्ष तो बाद में हुआ, तब तो परोक्ष था। अब, परोक्ष से तो काम नहीं होता (इसलिये) उन्हें प्रत्यक्ष

आने का भाव हुआ। अतः (एक मुमुक्षुभाई को) बोल रखा था कि, `मुझे आना है, आप जब जायें तब मुझे आना है।' हालाँकि वे तो न आ सके। दिन नक्की किया लेकिन उनको कोई काम आ पड़ा (इसलिये) वे तो वहाँ रह गये और ये (`सोगानीजी') अकेले ही गाड़ी में बैठ गये। क्योंकि वे `किशनगढ़' से बैठते और ये `अजमेर' से बैठे। अतः पहले तो उस मुमुक्षु को बैठना पड़ता। उन्होंने टिकट कटवा लिया होगा और आयेंगे तब एक डिब्बे में (साथ-साथ) हो जायेंगे। वे तो नहीं मिले तो कोई बात नहीं। टिकट लिया है हम तो बैठ जाते हैं। उनके नहीं आने की कोई वजह होगी।

(`सोनगढ़') आ पहुँचे। (प्रवचन) सुना, (उसमें) आत्मा सुना। `ज्ञान अने राग जुदां छे' - उस ज्ञान में आत्मा सुना। राग आत्मा से भिन्न है, ऐसे आत्मा को सुना। भिन्न आत्मा को सुना। राग से भिन्न ज्ञानमय आत्मा है ऐसा सुना और उसकी धुन चढ़ गई। वे कहते थे कि, शुरू के पंद्रह दिन कैसे बित गये, मुझे पता तक नहीं चला ! आत्मा की ऐसी धुन लगी कि, शुरू के पंद्रह दिन तो कैसे बीत गये इसकी खबर तक नहीं रही !!

घर पर कहा नहीं था कि, मैं इस जगह - `सोनगढ़' जा रहा हूँ। दो-तीन गाँव की बात चली थी। शायद `मुंबई' जाना पड़े, `सोनगढ़' भी जाने का विचार है। जाते समय ऐसा नहीं कहा कि, मैं `सोनगढ़' जा रहा हूँ। व्यापार की वज़ह से खरीदारी हेतु `मुंबई' जाना पड़ता, कोई न कोई काम से बाहरगाँव तो जाना पड़ता। उन दिनों `मुंबई' में हिन्दु-

मुसलमान के बीच दंगा चल रहा था। पंद्रह-पंद्रह दिन बीते फिर भी इनका कोई समाचार नहीं था इसलिये वहाँ सबको चिंता लगी। अतः जहाँ-जहाँ जाने की बात थी वहाँ सब जगह उन लोगोंने तार कर दिये। तार इस प्रकार का था कि, `आपकी कुशलता के समाचार तार द्वारा भेजिये।' `सोनगढ़' तार आया तब पता चला। उन लोगोंने दो-तीन जगह तार किये थे वह इसलिये कि, जहाँ होंगे वहाँ से समाचार आ जायेंगे और पता लग जायेगा कि, वे कहाँ है। पंद्रह दिन बाद वे भान में आये !! ठीक ! पंद्रह दिन बाद भान में आये ! ऐसी धुन चढ़ गई थी ! ...इतने दिनों तक पता भी नहीं चला कि, रात कहाँ बीत रही है और दिन कहाँ बीत रहे हैं !? ऐसी धुन में, घोलन में चढ़ गये थे !!

(`बहनश्री के वचनामृत' बोल-१५९, १०-७-८७ के प्रवचनमें से, २५:०० मिनट पर)

□

मुमुक्षु :- `सोगानीजी' को शास्त्र पढ़ने की आदत नहीं थी।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उन्हें आदत नहीं थी। आदत नहीं थी तो उन्हें बंधन भी नहीं था। एकभवतारी हैं, एक भव में (मोक्ष में) जायेंगे। Certified by Gurudev ! `श्रीमद्‌जी' ने तो निर्मल सम्यक्‌ज्ञान से अपना Certificate खुद ने ही प्रसिद्ध कर दिया। यहाँ तो गुरुदेव ने Certificate दे दिया।

दूसरों को तो अपेक्षा हो जाये कि, हमें Certificate मिले तो अच्छा ! परन्तु `सोगानीजी' की परिस्थिति समझने जैसी

है। एक दफा बात की कि, गुरुदेवश्री को पता चले तो बहुत प्रमोद होगा। आपके विषय में गुरुदेवश्री को पता चले कि, ऐसा भी कोई आत्मा निकला, मेरे इतने शिष्योंमें से एक ऐसा भी कोई निकला !! तो गुरुदेवश्री को प्रमोद होगा। इस प्रकार की बात रखते हैं। यह हमारे आपस में हुई चर्चा है। क्या जवाब दिया, देखो ! एक तरफ Certificate की लालच हो इसके बजाय क्या कहा, देखो ! `अगर गुरुदेव ने जान लिया तो आत्मा को क्या फायदा होगा ?' क्या कहा ? सामने प्रश्न किया ! कि, मान लिजीये गुरुदेव ने जाना कि, बहुत अच्छी स्थिति है ! इनकी आत्मस्थिति बहुत अच्छी है !! एक भव में (मोक्ष में) जायेंगे। तो कहा, `इससे मेरे आत्मा को क्या फायदा होगा ?' मेरे आत्मा के लिये यह बात निष्प्रयोजन है। ऐसा कहते हैं, ठीक ! मेरे आत्मा के लिये तो मेरे आत्मा का अवलंबन ही प्रयोजनभूत है, अन्य बातें मेरे आत्मा के लिये प्रयोजनभूत नहीं। देखो ! ऐसे जीव को Certificate मिलता है। Certificate की अपेक्षावाले को Certificate नहीं मिलता। इनकी ऐसी स्थिति थी। ये तो सब प्रत्यक्ष परिचय का विषय है।

(`बहनश्री के वचनामृत' बोल-२२१, १८-११-८७ के प्रवचनमें से, ४५:०० मिनट पर)

□

`सोगानीजी' की तो लाइन ही ऐसी थी ! एक बार ऐसा कहा, जो हमने इसमें (-`द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में) ६४५ (बोल में) लिया है कि, जब से ऐसा पता चला कि, केवलज्ञान

होनेपर सब जानने में आ जायेगा, फिर तो शास्त्रमें से और इधर-उधर से जानने की वृत्ति ही बंद हो गई कि, चलो ! पढ़-पढ़कर जान लूँ।

इसमें से दूसरी एक बात यह निकलती है कि, केवलज्ञान मुझे होनेवाला है ऐसा उन्हें प्रतीति में आ गया था। यह इसमें से निकलता है। जब मुझे केवलज्ञान होनेवाला ही है तो फिर अभी से मैं ये शास्त्र पढ़-पढ़कर जानने की मजदूरी क्यों करूँ !? ये सब तो जब केवलज्ञान होगा तब जानने में आ ही जानेवाला है। इसलिये अभी तो मैं अपने स्वरूप में एकाग्र होकर केवलज्ञान की तैयारी करूँ। ये दूसरा-दूसरा जानने की तैयारी करूँ उसके बजाय मैं केवलज्ञान की तैयारी क्यों न करूँ ? ऐसा इसमें अभिप्राय है।

`मुंबई' से किसी ने प्रश्न किया था कि, `आप शास्त्र (वांचन) आदि का इतना अधिक निषेध करते हो लेकिन आचार्यों ने भी शास्त्र की रचना की है और गणधरदेवों ने भी अंग-पूर्व की रचना की है। कहीं आप उनसे भी आगे तो नहीं बढ़ गये ?' कहने का मतलब तो ऐसा था। गणधरदेवों ने और आचार्यों ने द्रव्यश्रुत की रचना की है। आप तो अभी यहाँ गृहस्थ अवस्था में कोठी पर बैठे-बैठे चर्चा (कर रहे हो)। `कलकत्ता' के फॉर्ट एरिया में किसीकी कोठी पर ठहरते थे। उनकी मिल के जो प्रिन्सिपल थे, खुद इनके एजन्ट थे। उनकी ऑफिस में ठहरते थे। ये व्यापार, ये ऑफिस इन सबके बीच में आप द्रव्यश्रुत का निषेध करते हो ! इतना अधिक निषेध करते हो ! जबकि गणधरदेव भी शास्त्र की

रचना करते हैं !

कहते हैं कि, वे गणधरदेव शास्त्र की रचना करते हैं उसका उन्हें निषेध वर्तता है। और तो और शास्त्र रचने के परिणाम को ऐसा जानते हैं कि, इतना विकल्प भी कमजोरी के कारण उत्पन्न हुआ है। जितनी राग की उत्पत्ति हुई उतनी कमज़ोरीमें से उत्पत्ति हुई है, वह तो नुकसान ही है ऐसा जानते हैं। ऐसा जानते हैं, ठीक !

एक बात तो बहुत सुन्दर की थी, थोड़ी कड़क है ! मोक्षमार्ग में भी अधिकांश जीव मंद पुरुषार्थी जीव होते हैं और मंद पुरुषार्थ के काल में मोक्षमार्गी जीव - धर्मी जीव भी शास्त्र में अटकते-अटकते आगे बढ़ते हैं !! क्या कहा ? शास्त्र में अटकते-अटकते आगे बढ़ते हैं। तीव्र पुरुषार्थी जीव बहुत अल्प होते हैं जो एकदम तेज़ी से अंदर उतर जाते हैं !! ऐसे बहुत अल्प जीव निकलते हैं। किसका अनुमोदन करेंगे ? ऐसा पूछा था उन्होंने। ये अटकते-अटकते आगे बढ़ते हैं उनका या तीव्र गति से अंदर में परिणमन करते हैं उनका ? हालाँकि पर्याय का कर्तृत्व दोमें से किसीको नहीं होता। यह बात समझ लेनी है। यह तो ज्ञान करने का विषय है।

मुमुक्षु :- थोड़ा फिर से लीजिये न।

पूज्य भाईश्री :- मोक्षमार्ग में आये हुए जीवों में जो मोक्षमार्गी जीव होते हैं उनमें भी तीव्र पुरुषार्थी जीव अल्प होते हैं, मंद पुरुषार्थी जीवों की संख्या अधिक होती है। अतः सामान्यतया लोगों में ऐसा खयाल है कि, धर्मी जीव भी सत् शास्त्र के स्वाध्याय की, वांचन की, प्रकाशन की, प्रचार की, प्रसार की

प्रवृत्ति करते हैं। परन्तु ऐसे विकल्प मंद पुरुषार्थ के काल में आते हैं, तीव्र पुरुषार्थ के काल में तो मोक्षमार्गी जीव को शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है !! अतः ऐसी जो प्रवृत्ति होती है उसे वे भी ऐसी ही जानते हैं। अब अनुमोदन किसको देना ? तीव्र पुरुषार्थी को या मंद पुरुषार्थी को ? मंद पुरुषार्थ का अनुमोदन कर्तव्य नहीं है, ऐसा कहना है।

हालाँकि मंद (पुरुषार्थ) भी सहज है और तीव्र भी सहज है। इसलिये ऐसा क्यों ? यह असमाधान धर्मी को तो नहीं वर्तता - ऐसा है। यह तो ज्ञान कराया है कि, इसमें दो प्रकार होते हैं। बहुत तेज़ीवाली लाइन थी !! गुरुदेवश्री ने तो पीछे से कहा न (कि), 'झपट करेंगे'। भले ही अभी देवलोक में गये हैं परन्तु वहाँ से निकलकर झपट करेंगे !! यह किस पर से कहा ? उनके भावों को पढ़कर कहा है।

(२५:०० मिनट पर)

❑

...हमारी चर्चा चली थी। (दूसरे एक मुमुक्षुभाई का) `सोगानीजी' के साथ प्रथम परिचय हुआ तब उनके साथ यह चर्चा चली थी। तीन बार सुना। सुबह-दोपहर-शाम दो-दो घंटे बैठते थे। मस्ती चढ़ जाये, हं ! घर गये और मस्ती चढ़ गई। वे खुद कहते थे कि, ऐसा लगा कि, अब चर्चा में क्या जाना ? लेकिन फिर विचार आया कि, गणधर भगवान भी सुनने जाते हैं। ऐसा विचार आया और मैं चर्चा में चला आया। फिर कहा कि, दो नय हैं न ? (इसलिये) व्यवहारनय से ऐसा विकल्प भी आता है। ऐसी चर्चा खुद ने आकर

की। दो नय हैं ऐसा कहा कि इसमें से चर्चा चली !!

(`सोगानीजी') ने कहा कि, `ऐसा नहीं, दो नहीं - दो नय है ही नहीं, एक ही नय है !' वहाँ से फिर चर्चा उठाई। क्या कहा ? `दो नय नहीं है, यहाँ तो एक ही नय है। दूसरा नय ही नहीं है !' वहाँ से बात उठाई। `गणधरभगवान को विकल्प आता है उसका निषेध आता है। विकल्प आता है तो जाते हैं, वह बात नहीं है। उनको निषेध आता है।' वे तो इसी तरह बात को बहुत उठाते थे। कोई भी बात चलती उसमें से अवलंबन का विषय इतना ज़ोर से उठाते... इतना ज़ोर से उठाते...!! ऐसी चर्चा चली है।

(`परमागमसार' बोल- ७४, दि. १४-१०-८२ के प्रवचनमें से, ४५:०० मिनट पर)

❑

...शास्त्र के आधार से कोई विद्वान आत्मा की बात करे तो उसमें आत्मरस सम्मिलित नहीं होता। जबकि ज्ञानी भले ही विद्वान न हो, उनमें विद्वता न हो फिर भी चैतन्य की बात करते हो तब उसमें उनका आत्मरस झलकता है। अपनी एक बात चली थी।

`मैं ही मैं हूँ' `सोगानीजी' की चर्चा चलती थी तब कभीकभार वे बहुत संक्षेप में बात करनी हो तब ऐसा कहते थे कि, `मैं ही मैं हूँ।' मैं जो हूँ सो मैं मेरे में ठीक हूँ। वैसे अपनी हस्ती की दृढ़ता की बात, शब्दों से तो बिलकुल संक्षेप में है, परन्तु भाव में इसका जो रस है, वह रस ऐसा है कि, इसमें वे जो कहना चाहते हैं उसे यदि ठीक तरह से लक्ष

में लिया जाये तो भीतरमें से उछाला आ जाये कि, क्या कहते हैं ये !! ऐसी भीतर में बहुत मजबूत स्थिति थी ! तीव्र पुरुषार्थ से अंदर की स्थिति मजबूत कर ली है !! एकावतारी हैं। यहाँ से देवलोक में गये हैं, (वहाँ से फिर) मनुष्य होंगे और चरमशरीरी मनुष्य होंगे। आखरी भव ! चारित्र अंगीकार करके अल्प काल में परिपूर्ण दशा को प्राप्त करेंगे। ऐसी स्थिति है।

वे कभी-कभी चर्चा में इतनी ही बात करते थे कि, `मैं ही मैं हूँ।' बस, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन यदि इनके रस को देखो, इनकी जमी हुई दशा को देखो तो इसके आगे विद्वानों के लंबे-लंबे भाषण सारहीन लगे। विद्वानों के लंबे-लंबे भाषण इसके आगे सारहीन जैसे लगे। इतना रसवाला यह वचन है !! ऐसा यदि जीव को रस आये, अपने स्वरूप का रस लगा हो, स्वरूपप्राप्ति का रस लगा हो तो आत्मरसपूर्वक निकले हुए ऐसे वचन सुनते हुए, पढ़ते हुए अंदर में संस्कार पड़ जाते हैं - छाप पड़ जाती है। रस है न ! मुहर लग जाती है। ये लगाते हैं न ? Government की मुहर लगती है न ? (यहाँ) अंदर में मुहर लग जाती है। संस्कार जो है वह जैसे सम्यग्दर्शन बहुत बड़ी बात है वैसे आत्मा में संस्कार पड़ना वह भी बहुत बड़ी बात है !

(`परमागमसार' बोल-१६०, दि. २४-१-८३ के प्रवचनमें से, ३५:०० मिनट पर)

□

...(`परमागमसार' के) २६५ (नंबर के) बोल में आश्रय

का प्रकार और आश्रय क्या चीज है वह आश्रय के साथ पारमार्थिक विषय किस प्रकार प्ररूपित होता है, प्रतिपादित होता है, यह बात ली है। बहुत मुद्दे की बात है। जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट विषय है !! ...यह जो न्याय है वह न्याय है तो अलौकिक है ! ऐसा कहीं है नहीं।

`सोगानीजी' की कथनशैली में यह मुख्य विषय था। उनके पत्र पहले-पहल देखे, उनके परिचय के पहले देखे थे, परिचय तो बाद में हुआ। पत्र तो पहले पढ़े थे। तब यह विचार आया था कि, जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट तत्त्वज्ञान का विषय इन पत्रों में है ! तब गुरुदेवश्री का विचार आया था कि, ओ..हो...! गुरुदेवश्री को सुनकर लोग इतना तत्त्व पकड़ सकते हैं !! क्योंकि ये सम्यक्दृष्टि है कि नहीं यह तो परिचय बिना नक्की नहीं हो सकता था। प्रश्न यह चला कि, सम्यक्दृष्टि है क्या ? कैसे पता चले ? मिलना पड़े, मिले बगैर कैसे पता चले ? परिचय के बिना कैसे पता चले ? परन्तु पत्रों का विषय तो जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट विषय है, इसमें कोई संशय नहीं। उस वक्त गुरुदेवश्री की महिमा विशेषरूप से आयी थी। (क्योंकि) मेरा तो वह प्रवेशकाल था। संवत-२०१५ की साल में शायद पत्र पढ़े होंगे, २०१४ की साल में ठीक-ठीक प्रवेश हुआ था। तब ऐसा लगा कि, ओ..हो...! यहाँ आनेवाले जीवों में... गुरुदेवश्री की महिमा तो पहले से थी परन्तु विशेष महिमा आयी कि, यहाँ आनेवाले जीवों में ऐसा-ऐसा प्रकार है कि, ऐसे गूढ़ विषय को पत्रों में भी लिख सकते हैं !! तत्त्वज्ञान की प्रसिद्धि कितनी हद तक हुई है

कि, ऐसे गूढ़ विषय को पत्रों में भी लिख सकते हैं !! ऐसा विचार आया था।

हालाँकि सब लोग इतनी हद तक नहीं होते परन्तु उस वक्त तो नये-नये थे तब कैसे पता चले कि, इसमें कौन, कितने, कैसे हैं ? उनको (`सोगानीजी' को) भी ऐसा ही लगा था ! खुद यहाँ आते ही अनुभव में आये तब उनको भी लगा था कि, मुझे प्रवेश के साथ ही ऐसा अनुभव हो गया तो यहाँ तो कई सारे रहते हैं, तो कइयों को ऐसा अनुभव होगा ! गुरुदेवश्री का परिचय तो सेंकड़ों, हजारों लोग करते हैं, जबकि मैं तो नया-नया हूँ, बहुतों को पुराना परिचय है। आदमी तो अपनी दृष्टि से ही विचार करेगा न ! जो भी नाप आयेगा वह तो अपने ऊपर से ही आयेगा न !

(`परमागमसार' बोल-२६५, दि. ६-६-८३ के प्रवचनमें से, ४०:०० मिनट पर)

❑

`सोगानीजी' के जीवन परिचय में, उनकी चर्चा में यह विषय है कि, बहुत छटपटाहट थी। वह पढ़ा तब एक बार तो ऐसी चर्चा चली कि, यह मार्ग तो सुख का है, इसमें पहले इतना दुःख हो ऐसा क्यों ? पहले इतना दुःख होवे ही ऐसा क्यों ? परन्तु ऐसा होता है। ऐसा बीच में आये बिना रहता नहीं। ऐसा है।

`मन कहता था कि, अगर शांति नहीं मिली थी तो फिर मेरे इस नश्वर शरीर का इस असार संसार से उठ जाना ही श्रेयस्कर है, मृत्यु बेहतर है।' यदि आत्मशांति नहीं

मिले तो मृत्यु बेहतर है। ऐसा नहीं है कि, सब अनुकूलता हो तो मेरा उपयोग समझने में लगे। यदि मुझे कोई चिंता न हो और सब ठीकठाक हो (तो) फिर स्वाध्याय में उपयोग बराबर लगे - ऐसा नहीं लिया। चाहे जो हो लेकिन एकबार यह आत्मा कौन है ? इस विषय में अपने स्वरूप की जिज्ञासा की तृप्ति हो जानी चाहिये।

जिज्ञासा को शास्त्र में प्यास कही है, प्यास ! अगर जीव को प्यास लगी हो और प्यास न छीपे तो मृत्यु हो जाये। इतनी हद तक होता है। जिज्ञासा जब इतनी हद तक आती है तब उस जिज्ञासा की तृप्ति हुए बिना नहीं होती और तब जीव को शांति होती है। तब उसका उपयोग निवृत्त होकर जानने की प्रवृत्ति करता है, उपयोग की निवृत्ति है। वरना दूसरी उपाधि में वह इतना घिरा हुआ रहता है... इतना घिरा हुआ रहता है कि, स्वरूप का विचार आयेगा लेकिन पहचान नहीं होगी।

`रात-रातभर जागकर अनेक जैनशास्त्रों का गहन अध्ययन किया।' जब इसके पीछे लगे थे तब सिर्फ शास्त्र ही पढ़ते रहते थे। दुकान पर भी शास्त्र पढ़ते थे ! ग्राहक आता तो आदमी उसे सँभाल लेता, वे पुस्तक को नहीं छोड़ते थे। यूँ ही चलने से दुकान बंद करने की नौबत आयी। ये सावधानी नहीं रही न ! सावधानी नहीं रही तो कारोबार तो अस्तव्यस्त हो ही जायेगा न ! भले ही हो गया !! दुकान बंद करके `कलकत्ता' जाना पड़ा, तो ये चले `कलकत्ता' ! परन्तु वहाँ जाने के पहले यह (तत्त्व को) पकड़ लिया था।

फिर चाहे `कलकत्ता' जाये या कहीं भी जाये कोई दिक्कत नहीं। भिन्न पड़ गये सो भिन्न पड़ गये।

एक पंडित रख लिया, वह समझाता था। नहीं समझ में आता वहाँ उन्हें पूछते। पंडित रख लिया, पंडित के लिये किराये पर घर ले लिया। खुद भी वहाँ रहने लगे (और कह दिया) मेरा खाना वहीं भेज देना ! घर तो नहीं आउँगा पर खाने के लिये भी नहीं आउँगा ! सोने-बैठने, खाने-पीने का सब वहाँ कर दिया। फिर भी अपनेआप समझ में नहीं आया।

देखो ! खूबी क्या है ? शास्त्र पढ़ लिये परन्तु समझ में नहीं आया। पंडित द्वारा समझने का प्रयास किया (फिर भी) समझ में नहीं आया और यहाँ (पूज्य गुरुदेवश्री से) सुना कि, `ज्ञान अने राग जुदां छे' ऐसा सुना, वह भी गुजराती में, मातृभाषा में भी नहीं - हिन्दी भाषा में भी नहीं और अंदर में प्रतिभास आया कि, ओ..हो...! ये तो ज्ञानस्वरूप अनंत ज्ञान का - प्रत्यक्ष ज्ञान का पिंड आत्मा है !! मेरे स्वरूप से तो प्रकट और प्रत्यक्ष ही हूँ न ! बस ! फिर तो धुन चढ़ गई ! घर में यदि चोर को देख ले फिर यूँ ही सो जाता है क्या ? कि, दरवाजा बंद करके सो जाओ न ! भले ही रहा अंदर ! वह खोल लेगा। वैसे धुन चढ़ गई सो चढ़ गई, चौबीस-अडतालीस घंटों में अनुभव लेकर उठे। (वरना पहले तो) पूजा आदि सब धार्मिक क्रियाएँ भी की थी, छः-छः घंटे पूजा ! चार-चार घंटे, छः-छः घंटे ! सुबह चार बजे मंदिर में प्रवेश कर लेते, चाहे कड़ाके की ठंड हो तो भी ! मंदिरमें से दस बजे बाहर निकलते थे। गृहस्थ जीवन

से अपना निवास अलग रखा। ये सब पूछा था कि, ये क्या लिखा है ? यह तो `कुमुदबहन' (`सोगानीजी' की सुपुत्री) ने लिखा है न '? तो कहा कि, बीच में पंडित रखा तब आते ही नहीं थे, घर ही नहीं आते थे। टिफन भी वहाँ भेजते थे।

`...अध्ययन, मनन और चिंतन की त्रिवेणी बहाई। परन्तु दिमाग में शांति के लिये धधकती ज्वाला की भट्ठी न बुझी, न शांत हुई। अनंत सुख की शोध में, सहजानंद की प्राप्ति के लिये रात-रातभर यहाँ से वहाँ भटकना हुआ। ' कहीं चैन नहीं पड़ा। चक्कर काटते थे, नींद नहीं आती थी तो चक्कर लगाते रहते। क्या है ? कहाँ जाना है ? मन कहता था कि, अगर अब शांति नहीं मिली तो यह देह छूट जायेगी और कोई इसका उपाय नहीं दिखता। इतनी वेदना में आये थे ! तब पता लगा। `**परन्तु जहाँ चाह है वहाँ राह है।**'

`पुण्यात्मा को गुरुदेव के `ज्ञान अने राग जुदां छे' इस वचन से एकदम शांति मिल गई।' इतना लिखा है।

(`परमागमसार' बोल-४७९, दि. १४-२-८४ के प्रवचनमें से, २५:०० मिनट पर)

□

`सोगानीजी' का पुस्तक संकलित किया तब एक प्रश्न हमारी चर्चा में चलता था कि, यह व्यक्ति सम्यक्ज्ञानी के रूप में समाज में प्रसिद्ध नहीं है (इसलिये) प्रश्न तो सामने आयेगा। इसलिये इन्हें सम्यक्ज्ञान है ऐसे ज्ञान के प्रमाण

इसमें से मिलते हैं कि नहीं ? ऐसे अनेक प्रमाण उनके वचनमें से मिलते हैं कि, जो सूचित करते हैं कि उन्हें सम्यक्ज्ञान था। यह साबित हो सके ऐसी बात है। इसलिये नक्की किया कि, इस चैलेंज का स्वीकार कर लेना ! यदि कोई चैलेंज सामने आये तो उसे उठा लेना ! इसलिये उन दिनों इस दृष्टिकोण से थोड़ा नोटिंग भी किया था, फिर छोड़ दिया। एकबार पूरा पुस्तक देख लिया था।

यह तो सम्यक्ज्ञान की कोई विशिष्टता ऐसी है और उनकी वचन विशिष्टता भी ऐसी थी कि, जिसको अनुभव नहीं हुआ हो उसकी ताकत नहीं है कि, मुकाबले में सामने आ सके !! लेकिन ऐसी परिस्थिति रही नहीं और हुई भी नहीं।

(`परमागमसार' बोल-६८३, दि. २९-९-८४ के प्रवचनमें से, ४०:०० मिनट पर)

□

गुरुदेवश्री ने कहा कि, ये `सोगानीजी' हमारे से पहले (मोक्ष में) जायेंगे, ठीक ! देखो ! श्रुतज्ञान में कैसा आया ! कोई केवलज्ञान नहीं था, फिर भी श्रुतज्ञान में आया कि, एकाद भव में देवलोकमें से निकलकर मनुष्य होकर झपट करेंगे ! ये उनके शब्द हैं - `**झपट करेंगे**!' वह लक्षण यहीं से दिख गया ! गज़ब तेज़ है ! तेज़ी जोरदार है !! एकदम द्रव्यदृष्टि का विषय ग्रहण किया है। आते ही सम्यक् लिया है। तेज़ी नाप ली कि, आते ही लिया है ! बरसों बीत जाये और बरसों तक अभ्यास करते रहे यह बात उनके लिये नहीं बनी।

(`परमागमसार' बोल-७३६, दि. १९-११-८४ के प्रवचनमें से, ५७:०० मिनट पर)

□

एक पत्र `सोगानीजी' के `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में है। पहले ही पत्र में यह विषय स्पष्ट हुआ है। उनकी लिखावट में सूक्ष्मता बहुत है। ऊपर-ऊपर से देखे तो अटपटा लगे। `**उत्कृष्ट शुभ-दृष्टि की अपेक्षा आपको महाराजश्री के व्याख्यानों की अनुकूलता है,...**' (अर्थात्) आपके निमित्त में उत्कृष्ट शुभ है। इस काल में ऐसा तीर्थंकरद्रव्य और उनकी वाणी आपको-`सोनगढ़' रहनेवालों को निरंतर मिल रही है ! इतना शुभयोग मिले कहाँ से ? हमें तो यहाँ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

`**उत्कृष्ट शुभ-दृष्टि की अपेक्षा आपको महाराजश्री के व्याख्यानों की अनुकूलता है, परन्तु यहाँ तो अशुभ प्रतिकूलताएँ बहुत हैं।**' गृहस्थी का जीवन है, अशुभ के प्रकार अधिक हैं, वे प्रतिकूल हैं, काफ़ी प्रतिकूल हैं। `**फिर भी...**' अब दूसरे अंश की बात करते हैं। अब ज्ञान का जो दूसरा अंश है वह बोल रहा है। पहले अंश ने बोल लिया कि, ये गृहस्थी के जो निमित्त हैं वे मुझे प्रतिकूल हैं, महाराजश्री का व्याख्यान मुझे अनुकूल है। इस एक अंश ने राग-द्वेष किया। राग-द्वेष नहीं किया (परन्तु) विवेक किया। ऐसा कहते हैं।

अब ज्ञान का दूसरा अंश बोलता है - `**फिर भी `मुझे विश्व में कोई भी पदार्थ अनुकूल है ना प्रतिकूल है**'**-**' इस जगत में मुझे कोई पदार्थ अनुकूल भी नहीं और कोई पदार्थ

प्रतिकूल भी नहीं। `**इस सिद्धांत को लेकर मैं प्रतिकूलताओं को भी अनुकूल ही समझता हूँ।**' अथवा उसे मैं अनुकूल-प्रतिकूल वास्तव में नहीं मानता। मानता हूँ (ऐसा) कहते जाते हैं और ना भी देते जाते हैं। एक अंश ने बोला फिर दूसरे अंश ने बोला। इसका उल्लंघन करके बोला, उसे दबाकर बोला कि, बैठ ! अभी अंदर में परिणमन ऐसा (भी) है। ये सब ज्ञानी के अंतरंग परिणमन के खेल हैं।

`**इस सिद्धान्तको लेकर मैं प्रतिकूलताओं को भी अनुकूल ही समझता हूँ। कारण ऐसी अवस्था में परिणाम केवल स्वसामर्थ्य का ही आश्रय लेते रहें, यही एक प्रयोजन रहता है व पर तरफ अधिक नहीं अटक पाते।**' और तो और इन प्रतिकूल निमित्तों को प्रतिकूलता समझकर अटकना नहीं होता, स्वआश्रय विशेष लेकर पर की ओर अटकना बंद करते हैं। ऐसी-ऐसी सूक्ष्म बातें अन्यत्र भी आयी हैं। चर्चा में भी आयी हैं, पत्रों में भी आयी हैं।

दोनों बात एकसाथ परिणमन में हैं और कथन में क्रम से आये इसलिये अटपटा लगे कि, ऐसा भी कहते हैं और वैसा भी कहते हैं। तो फिर है क्या ? परन्तु ये दोनों बातें होती हैं। एक निश्चय है और एक व्यवहार है। ऐसा है। निश्चय में एकांत स्वरूप का आदर और आराधन है जबकि व्यवहार में व्यवहार का विवेक है। इसकी मर्यादा यहाँ तक होती है अन्यथा मर्यादा टूटकर व्यवहार का परिणमन नहीं होता।

(`परमागमसार' बोल-७७१, दि. १९-१२-८४ के प्रवचनमें

से, ४५:०० मिनट पर)

□

गुरुदेव का एक प्रसंग (कहता हूँ) `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' के तीसरे भाग पर प्रतिबंध रखा था कि, यह तो हमारे हाथ से जिसको ठीक लगेगा उसको देंगे। जिसमें से कुछएक पुस्तकें दी गई। फिर पाँच साल का समय व्यतीत हो गया। पाँच साल बाद एक बार अचानक उन्हें याद आया। दोपहर को व्याख्यान के पहले उनके कमरे में जाना हुआ। व्याख्यान में आने में अभी पाँच-दस मिनट की देर थी। इसलिये दर्शन करने, वंदन करने मैं अंदर गया। उन्होंने सामने से पूछा कि, `ये जो तीसरे भाग की पुस्तकें नहीं देने के हिसाब से बिना बाइन्डिंग किये रखी थी वह कितनी हैं ?' बाइन्डींग की हुई पाँचसौमें से किसी-किसी को उन्होंने दी थी। मैंने कहा `सोलहसौ बिना बाइन्डिंग की हुई पड़ी हैं।' २१०० छपवाई थी जिसमें पाँचसौ की बाइन्डींग करवाई थी। वे तो अपने हाथों से किसी-किसी को तीनों भाग एकसाथ देते थे। जो करीब-करीब दे चुके थे। (मैंने कहा) `सोलहसौ हैं।' (फिर उन्होंने पूछा) `कहाँ है ?' (मैंने कहा) `हीरालालजी के वहाँ अलमारी में पड़ी हैं।' (गुरुदेव ने पूछा) `अभी भी पड़ी हैं ?' (मैंने कहा) `हाँ, पड़ी हैं, परन्तु अब पन्ने पीले पड़ने लगे हैं।' पाँच साल बाद पन्ने तो पीले हो ही जायेंगे। अभी भी बहुत पीले हो जाते हैं। (गुरुदेव ने कहा) `अच्छा ! शास्त्र की अशातना हो जायेगी, यह तो शास्त्र है।' ऐसे शब्द बोले। `शास्त्र है और इसकी अशातना हो जायेगी। एक काम कीजिये

ब्रह्मचारी बहनों को देना शुरू कर दो।' अतः शर्त जो एकदम Tight थी उसे Loose कर दी। `देने लगो !' फिर दोसौ-दोसौ उनके पास रखना शुरू कर दिया। दोसौ खत्म होते ही दूसरे दोसौ, तीसरे दोसौ... फिर तो बहुत छूट से देना शुरू कर दिया।

Point इतना ही है कि, भावश्रुतवाले जीव के श्रीमुख से तत्त्वज्ञान का विषय निकले वह द्रव्यश्रुतरूप हो जाता है। उसे द्रव्यश्रुत कहो या शास्त्र कहो (दोनों एकार्थ हैं)।

(`परमागमसार' बोल-६९८, दि. ९-१०-८४ के प्रवचनमें से, १५:०० मिनट पर)

▯

`पूज्य सोगानीजी' सम्बन्धित `गुरु गिरा गौरव'में से चयन की गई कुछएक प्रासंगिक प्रेरणादायक बातें।

मुमुक्षु :- जीवनीमें श्रवणबेलगोलाका प्रसंग लिखा है न ! रातको पहाड़ पर चढ़ जाते।

पूज्य भाईश्री :- ऊपर चले जाते, जब श्रवणबेलगोला जाते तब। घर पर भी उनकी यही स्थिति थी। सोनगढ़ आये तो वहाँ पर वैसी ही, कहीं भी गये हो, रातको तो सब सो जाते हैं, कोई Disturbance नहीं रहता, एकांत मिल जाता। दुनिया सो गई है न ! अपने जागो, अपना काम कर लो। लोग अभी सोये हैं, इतनेमें अपना काम कर लो ! अपना अंतर काट लो ! बहुत काम किया है ! इस प्रकारसे बहुत काम किया है ! (पन्ना-३२)

▯

वैसे पीछेसे तो जब यहाँ (सोनगढ़) आने लगे, पिछले बरसोंमें जब मुझे मिले तब तो ऐसे कहते थे कि, `अब तो बाजारमें मैं जाता ही कम हूँ। लड़के लोग (धंधा) सँभालते हैं' इसलिए खुदने (जाना) कम कर दिया। कभी-कभी तो दोपहरमें खाना खाकर एक-दो बजे जाते थे ! बाजारवालोंने आधे दिनका व्यापार भी कर लिया हो जब तो इनकी बाजारमें जानेकी

शुरूआत होती ! लोगोंका आधे दिनका व्यवसाय हो चुका हो, तब ये तो अभी शुरूआत करते ! क्योंकि वे ज्ञान-ध्यानमें जो बैठ गये हो उस (ध्यानमेंसे) बाहर कब निकलेंगे इसका कोई ठिकाना नहीं रहता। कब स्नान करें, कब दूसरी क्रियाएँ निपटायें और बादमें खाना खाकर फिर जाते थे ! देर हो जाती थी। एक बज जाता, कभी दो बज जाते - ऐसा हो जाता था। (पन्ना-६९)

□

`**दूसरोंको लगे कि मैं देख रहा हूँ...**' क्या (कहते हैं)? दूसरोंको ऐसा लगे कि मैं उसके सामने देखता हूँ। `**लेकिन कोई** (**घरमें**) **चोरी कर जाए तो भी मुझे मालूम न पड़े।** (माने) आँखें खुली हो परंतु वे अपनी धुनमें बैठे हो। घरमेंसे कोई चोरी करके, चीजवस्तु उठा ले जाये तो भी ध्यान न रहे।

...वैसे ही, दूसरोंको ऐसा लगे कि मैं कुछ देख रहा हूँ, परंतु कोई घरमेंसे चोरी कर जाये तो भी मुझे पता नहीं रहता। दूसरा, `**मेरे कपड़े कितने हैं ?**' ये भी उन्हें मालूम नहीं होता था। ये अब नये कपड़े खरीदने होंगे, या कपड़े कहाँ रखे हैं ? कितने हैं ? इस्तिरीमें गये हैं कि नहीं ? इस्तिरी बराबर हुई है कि नहीं ? कोई (ध्यान) नहीं ! इस प्रकारकी एक उदासीनता आ गई थी। चाहे जैसे भी चलता। `**घरमें चीज वस्तु है या नहीं ?**' ये भी पता नहीं रहता। जिसको जरूरत होगी, अपने आप मँगवायेगा ! इसलिए उसका विकल्प नहीं, उसकी चिंता नहीं। अपने कपड़ोंकी चिंता नहीं,

घरकी चीज-वस्तुओंकी चिंता नहीं, उन्हें कुछ पता ही नहीं रहता। पता रहे नहीं ऐसी धुन चढ़ गई थी कि कुछ ध्यान ही न रहे। ध्यान रखना चाहे तो भी रहे नहीं। ध्यान रखना है और नहीं रखते - ऐसा नहीं। पता रखना चाहे तो भी रहे नहीं, इतनी धुनमें चढ़ गये थे। (पन्ना-७३)

□

`(**स्वयंकी प्रसिद्धिके बारेमें पूछा गया तब कहा कि :**) **कोई जाने न जाने, इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है।**' दरअसलमें सामाजिक प्रसिद्धिकी बात नहीं चली थी। बात तो चली थी कि ये परिस्थिति (आपकी अंतरंग परिस्थिति) गुरुदेवको बतायी जाये। जब गुरुदेवसे उपकार हुआ है, आत्मकल्याणमें निमित्तभूत तो गुरुदेव हुए हैं और गुरुदेवको वह बातकी जानकारी नहीं है कि, उसको सम्यक्‌दर्शनकी, दृष्टिकी प्राप्ति हो गई है, आत्मदृष्टि प्रगट हुई है, तो गुरुदेवको यह जानकर प्रसन्नता और होगी। जब कोई पात्र जीवको देखकर भी महापुरुषकी प्रसन्नता बढ़ती है तो अपने निमित्तसे किसीको मार्ग मिलता है तो और (भी) प्रसन्नता बढ़ती है। अतः गुरुदेवकी भी प्रसन्नता बढ़ेगी और आपको भी उपकार विदित करनेका एक कार्य हो जायेगा। उपकारीके प्रति उपकार निवेदन करे तो उसमें क्या तकलीफ है? क्या हरज़ा है ? इस ढंगसे बात तो हमने ही रखी थी। लेकिन वे प्रसिद्धिमें आनेके लिये तैयार नहीं थे। खुद तो प्रसिद्धि होवें उस बातमें तैयार नहीं थे। क्योंकि वे जानते थे कि जब गुरुदेवको पता चलेगा तो सारे समाजमें यह बात फैलेगी। और हमें तो समाजसे कोई

परिचय बढ़ाना नहीं। न तो हमारा कोई समाजसे प्रसिद्धिका कारण (हेतु) है।

उन्होंने इस ढंगसे बात ली कि, कोई जाने - न जाने, (इससे आत्माको क्या फायदा ?) जवाब तो ऐसे दिया था कि, मानो गुरुदेवने जान लिया, (तो) मेरे आत्माको क्या फायदा हो जायेगा ? मेरा तो इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा फायदा होनेका कोई प्रयोजन तो है नहीं ! तो फिर (हमने) न्याय वह रखा था कि, उपकारीके प्रति उपकार निवेदन करना यह भी एक व्यवहारिक तौरसे फ़र्ज होता है। (उन्होंने कहा कि) कोई सहज बात हो गई तो दूसरी बात है, चलाकरके ये बात करना यह मेरेसे नहीं हो सकेगा। ऐसा कहते थे कि सहज (बात) हो गई तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन चलाकरके तो मैं नहीं कह सकूँगा। मैंने कहा, 'मैं बताऊँगा, आप कुछ मत बोलिये, मैं साथमें चलूँगा और मेरी तो गुरुदेवसे बातें करनेकी बहुत (छूट है), आगे-पीछे हमारी तो (बातें) चलती रहती हैं, मैं तो जाता-आता हूँ। हम तो बहुतसी बातें करते हैं।' तो (उन्होंने) कहा 'आप क्यों बोझा उठाते हो इस बातका ? मेरे लिये बोझा क्यों उठाते हो ?' इस तरह वे सम्मत नहीं होते थे। (पन्ना-८२)

❑

'यह (भव) तो मुसाफिरी है। अब तो आखिरी मुसाफिरी है।' ठीक !

मुमुक्षु :- कितनी दृढ़ता थी !!

पूज्य भाईश्री :- बहुत दृढ़ता थी। बहुत दृढ़ता क्या (कहे

अरे !) ऐसे जो एकावतारी पुरुष होते हैं उनका पुरुषार्थ ऐसा होता है कि इस भवमें ही मैं मेरे कामको पूरा कर लूँ। दूसरा भव भी क्यों ? इसका यही कारण है कि, जब मेरे स्वरूपमें मेरी एकाग्रता होती है, हो सकती है और ये स्ववश परिणाम है - परवश परिणाम नहीं है, स्वाधीन परिणमन है, तो मैं क्यों पूर्णरूपसे स्थिर नहीं रह पाऊँ ? (इसलिये) उनका प्रयास तो पूर्ण होनेका ही रहता है। पूर्णताकी भावना तो शुरूआतसे है, और पुरुषार्थ भी ऐसा चलता है। फिर भी वस्तुव्यवस्था तो मिटती नहीं है या बदलती नहीं है तो (पुरुषार्थमें) कुछ कमी रह जाती है तो एक भव बीचमें देवलोकका हो जाता है। उतनी बात है। लेकिन इतना पुरुषार्थ ज़ोरसे चलता है कि, वे पूरा करनेकी तैयारीमें आते हैं। फिर भी एक भव रह जाता है तो इसकी कोई गिनती नहीं करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीने एकभवतारीपना मान्य किया लेकिन उन्होंने खुदने भी इस वचनामृतमें अपनी घोषणा की है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ ! ठीक है। सही बात है।

(पन्ना-८९)

❑

'पूर्व उदयके योगसे मैं आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह...' यानी कि आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह गुरुदेवकी समीप मैं भी रह सकूँ, उनके संगका लाभ ले सकूँ, उनके वचनामृतका लाभ ले सकूँ, ऐसा नहीं बन पाता है। यह संभव नहीं। ऐसा लाभ नहीं ले सकता हूँ इसका मुझे बहुत खेद है, बहुत-बहुत खेद है। महान खेद है माने मुझे इसका बहुत खेद

है। एक तरफ इतना खेद होता है तो दूसरी तरफ परिणाममें एक और भी परिस्थिति है जिसे खुद अभी स्पष्ट कर रहे हैं।

`**साथ ही उनके बोध द्वारा बोधित मुझे...**' (अर्थात्) उनके बोधसे जो मैं बोधित हुआ हूँ ऐसे मुझको, `**यह संतोष भी होता है कि निश्चयसे सत्गुरुदेव मुझसे दूर नहीं हैं...**' (अर्थात्) गुरुदेवको मेरे हृदयमें स्थापित किये हैं अतः वास्तवमें - निश्चयसे गुरुदेव मुझसे दूर नहीं है। उनका ऐसा तो बोध मिला गया है कि, गुरदेवको तो मैंने अंदरमें - हृदयमें बसा लिए हैं। `**जहाँ मैं हूँ वहाँ ही मेरे गुरु हैं,...**' जहाँ भी जाता हूँ वहाँ मेरे गुरु तो मेरे साथ ही आते हैं। मुझसे ज़रा भी दूर नहीं है। `**अतः मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ...**' ये आत्मा ले लिया। उनका बोध जो है वे गुरुदेव हैं और उनके बोधका विषय जो आत्मा है वह मेरे निश्चय गुरुदेव हैं बस ! मेरे गुरुदेव मुझसे अलग नहीं हो सकते। जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ साथमें ही हैं। और सतत उन्हींको देखनेका मेरा पुरुषार्थ चलता है। मेरे आत्माको देखनेका ही मेरा सतत-निरंतर पुरुषार्थ चलता है। `**और जब-जब गाढ़ दर्शन होता है...**' यानी कि (जब-जब) अनुभव होता है - अभेद अनुभव होता है तब गाढ़ दर्शन होता है। ५०की सालमें तो अपनी दशा व्यक्त कर दी है। `**जब-जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका लाभ लेता रहता हूँ,...**' अपूर्व-अपूर्व रस (अर्थात्) आत्माके चैतन्यरसका आस्वाद आता है और वह लेता रहता हूँ। और `**मानसिक विकल्परूपी**

भारसे हलका होता रहता हूँ,...' और जितना भी विकल्पका बोझ है उससे हलका होता रहता हूँ। `**सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ।**' (यानी) मेरा जो ज्ञानघन स्वभाव है उसमें मेरा परिणमन वृद्धिगत होता ही जाता है। (स्वयंकी ज्ञानदशाकी) स्पष्ट बात लिखी है। और तब, `**सोनगढ़की चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्तिको अधिक समीप गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।**' श्रीमद्जीने २२३ पत्रमें ये शब्द इस्तेमाल किया है न ! ज्ञानीपुरुष तो परमात्मा ही हैं - देहधारी परमात्मा हैं - ज्ञानीपुरुष हैं वे तो देहधारी परमात्मा - दिव्यमूर्ति (हैं)। ये `दिव्यमूर्ति' शब्द यहाँ (आया है)। `**सोनगढ़की चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्तिको अधिक समीप होकर...**' यानी कि उनका जो परिणमन है उसके समीप मैं पहुँच गया हूँ। उनका जो परिणमन है वह परिणमन मुझे स्पष्ट दिख रहा है। `**अधिक समीप होकर गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।**' अर्थात् उनको मैंने पहचाना है, उनका जो अंतरंग स्वरूप है वह मेरे ज्ञानमें है और उनकी जो गहनता है - उस विषयकी जो गहनता है - अध्यात्म तत्त्वकी जो गहनता है, उस गहनताको मैं भी गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ। मेरा परिणाम सतत मेरेमें है, मेरे स्वरूपका मैं गाढ़ दर्शन करता हूँ। मेरे स्वरूपका रसास्वाद लेता हूँ। विकल्परूपी बोझ हलका होता जा रहा है।

(इन दिनोंमें) आर्थिक स्थिति बिगड़ी है। १९५०में अजमेर छोड़कर, दुकान बंद करके आर्थिक प्रयोजन वश कलकत्ता आये हैं। कि जहाँ कोई आश्रय नहीं था। कोई सगे-संबंधीके वहाँ नहीं, किसीके वहाँ नहीं। धर्मशालामें उतरते थे, सेनेटोरियममें

उतरते थे, क्योंकि कम खर्चमें रह सके। कुटुंबको साथमें लानेकी परिस्थिति नहीं थी। कोई रूम लेनेकी भी परिस्थिति नहीं थी। बादमें (किराये पर) रूम ली थी। `नुर्मल लोह्या लेन' पाँचिया गलीमें पहले-पहले रूम ली है। `महिपत बागला रोड़' पर बादमें (रहने) गये हैं। वहाँ थोड़ी बड़ी जगह थी। वहाँ तो दो बेड़रूम, दिवानखाना, रसोईघर अलग-अलग थे। भीतरमें बरामदा था। वहाँ मैं हो आया हूँ। पहली-पहली बार ३०की सालमें कलकत्ता गया तब तक वे लोग अभी वहीं रहते थे। खाना खाने भी वहाँ गये थे फिर पूछा था ध्यानमें बैठते थे वह रूम कौन सा? तो कहा, ये जो बेड़रूम है उसमें ध्यान करते थे। ये वही रूम है। इस रूमको बंद करके बैठ जाते थे। उस वक्त तो पूरा परिवार आ चुका था। परिवार बड़ा था - जिसमें चार लड़की, चार लड़के, खुद दो, ऐसे कुल मिलाकर दस सद्स्योंका परिवार था।

(पन्ना-११२)

□

मुमुक्षु :- पत्र आते थे तब सोगानीजी पर ध्यान नहीं गया होगा?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, कोई उन्हें पहचान ही न सका। उन्हें कोई पहचान नहीं पाया है, वास्तवमें तो यह बात है। मैं २०१६की सालमें परिचयमें आया, इसके पहले उनके पत्र पढ़ें थे। तब उस मुमुक्षुने मुझे पूछा था कि, क्या लगता है? (तब मैंने कहा) `जैन दर्शनका अपना जो विषय है - Top level का जो दृष्टिका विषय है वह इस पत्रमें आया है।

' तब उस मुमुक्षुने कहा कि, `ये पत्रोंमें जो ऐसा आता है इसका क्या लगता है?' क्योंकि उन्हें भी पहचान नहीं थी। उनको उघाड़ था इसलिए एक खयालमें था कि, दूसरोंसे कोई विशिष्टता है, परंतु प्रतीति कहाँसे लाये? (क्योंकि) पहचानमें तो विश्वास पैदा होता है। वह विश्वास कहाँसे लाये? पहचान विश्वासको पैदा करती है, वह कहाँसे लाये? इसलिए (मुझे) पूछा कि, आपको क्या लगता है? (तब मैंने कहा) मिले बिना कुछ नहीं कह सकता। प्रत्यक्ष हुए बिना कुछ नहीं कहूँगा। (उन्होंने) आखरी हदकी बात तो कर दी है, फिर भी मिले बिना (कोई) Judjement नहीं दे सकता।

२०१६की सालमें अचानक आ पहुँचे। मैं तो इतवारको (सोनगढ़) जाता था लेकिन वे तो चालू दिनोंमें आ गये। तूरंत ही उस मुमुक्षुने (मुझे) Post-card लिख दिया। दूसरे दिन दुकान पर मुझे Post-card मिल गया और तीसरे दिन सुबह मैं चालू दिनमें ही (सोनगढ़) पहुँच गया ! `हमलोग ने जिनके पत्र पढ़े थे, जिनकी चर्चा हुई थी वे व्यक्ति विशेष श्री निहालचंदभाई सोगानी अचानक ही आये हैं, कागज मिलते ही आप फ़ौरन् आईये।' (ऐसा कागजमें लिखा था।) फिर रूबरूमें तो कुछ पूछना पड़े ऐसा नहीं था फिर भी एक प्रश्न किया था। मैं सुबहकी बससे गया (और घर पहुँचा तब सोगानीजीको) स्नान करना बाकी था। और सब चाय-नास्ता आदि निपटा लिया था, फिर वे स्नान करने जा रहे थे कि मैं पहुँचा। व्याख्यान शुरू होनेमें अभी १५-२० मिनिटकी देर थी। (अतः उन्होंने कहा) `मेरा स्नान करना बाकी है।' मैंने कहा `इतना

टाइम (बाकी) है', उन्होंने कहा `आप जाईये !' (यानी कि) `आप व्याख्यानमें जाईये। मैं तैयार होकर आता हूँ।' अतः उस वक्त तो बात करनेका समय नहीं था। व्याख्यानका एक घंटा पसार हो गया। फिर हमलोग साथमें घर आये तब एक प्रश्न किया था, बादमें दूसरा प्रश्न नहीं किया, लेकिन (उसमें) तो पूछना पड़े ऐसा नहीं था। जो चर्चाएँ चली (वह विशिष्ट प्रकारकी चली) ! ये तो लिखाईमें इतना आया है वरना बोलनेमें तो बहुत Spirit था, अतिशय Spirit था।

मुमुक्षु :- क्या प्रश्न किया था ?

पूज्य भाईश्री :- प्रश्न तो ऐसा किया था कि स्वानुभवके करीब-करीब पहले चल रहे विकल्पोंके वक्त जो भेदज्ञान चलता है (यानी कि) रागसे भिन्नताका (जो भेदज्ञान चलता है), वह ऐसा भेदज्ञान चलता है कि अनुभवके पश्चात् जो भेदज्ञान चलता है - ऐसा ही भेदज्ञान चलता है। इन दोनों सविकल्पात्मक भेदज्ञानके बीचमें अनुभव होता है। तो जिस भेदज्ञानके फलमें अनुभव होता है (कि) जो करीब-करीब पहलेकी मिनटोंमें (चलता है) और (अनुभव होनेके) बाद जो भेदज्ञानकी परिणति चलती है - इन दोनोंमें अंतर - तफावत क्या है ? ऐसा प्रश्न किया था। तो उन्होंने कहा, पहलेकी क्षणोंमें जो भेदज्ञान चलता है उसमें `रागसे भिन्न हूँ' ऐसा जो भेदज्ञानका प्रकार है, इसमें जो ज्ञानकी सावधानी है कि `मैं ज्ञानमय हूँ' उसमें समयांतर है, जब कि स्वानुभवके पश्चात् परिणतिमें एक साथ (भिन्न पड़ते) हैं। एकसाथ माने राग और ज्ञान एकसाथ भिन्न पड़ते हैं। एक ही समयमें भिन्न पड़ते हैं। जब कि इसमें (स्वानुभव होनेके

पूर्व चलते हुए भेदज्ञानमें) सूक्ष्म समयांतर है। ये जो चलता हुआ राग है और चलता हुआ ज्ञान है - उसमें `रागसे भिन्न हूँ' - ऐसा (अनुभवमें) लेते वक्त सूक्ष्म समयका अंतराल है। परंतु इतना सूक्ष्म समय है कि जैसे लगे ऐसा कि दोनों भेदज्ञान एक ही सरीखे हैं। इतना सूक्ष्म अंतराल है ! लेकिन अंतराल है। क्योंकि अनुभव नहीं है। परंतु भेदज्ञान ऐसा है कि अनुभवमें परिणत हो जायेगा। बस ! बात पूरी हो गई। जो इसमेंसे पसार हुआ हो उसीको ये पता होगा वरना इस बातसे बेखबर होगा। जैसे ही घर पहुँचे कि पहले ही यह प्रश्न पूछा। आंगनमें खाट पड़ी थी। पहला प्रश्न ये पूछा था और उन्होंने ऐसा जवाब दिया था। बादमें कोई भी प्रश्न परीक्षाके खातिर नहीं पूछा था। यूँ ही कोई भी चर्चा चली हो लेकिन (परीक्षाके खातिर) दूसरा प्रश्न नहीं पूछा।

मुमुक्षु :- सोगानीजी जो पहली दफा आये और उसी दिन अनुभव किया, तो ये बात कैसे मालूम हुई ? क्योंकि उस वक्त तो और कोई पहचानता नहीं था ?

पूज्य भाईश्री :- उनके साथ ही बात हुई थी। और अन्य मुमुक्षुओंने मुझे बात कही थी। यानी उन्होंने तो पूछा था कि, आपको अनुभव कब हुआ ? फिर उन्होंने मुझे बात कही थी तब मुझे पता पड़ा। फिर भी मैंने सीधा पूछा था ज़रूर। परंतु उसवक्त जब पहली बार मिले उस वक्त नहीं पूछा था। फिर जब दूसरी, तीसरी बार आये तब एक बार हमलोग बैठे थे तब बात की थी कि, `क्या आपको पहले दिन ही अनुभव हो गया था ?' पहली रातको ही अनुभव हो गया

था ? तब कहा था, `पहली रात है या दूसरी रात है, यह मुझे याद नहीं रहा।' इतना निश्चितरूपसे मुझे याद नहीं रहा कि पहली रात थी या दूसरी थी। मैं तो धुनमें चढ़ गया था। इतनी धुन थी कि वह पहली रात थी या दूसरी रात थी यह मैं कह नहीं सकता। बहुत निश्चितरूपसे नहीं कह सकता। हमारी प्रत्यक्ष बात चली जब तो ऐसा उत्तर दिया था। परंतु संभव है कि पहली रातको ही हुआ हो, तो इसमें कोई नई बात नहीं है। मुझे पता था फिर भी मैंने पूछा था। परंतु जब हमारे बीच आत्मीयता बढ़ी और दूसरी-तीसरी दफा जब सोनगढ़ आये तब मैंने एक बार पूछ लिया था कि, सुना है कि आपको उसी दिन रातको अनुभव हुआ है। स्वानुभव-निर्विकल्पदशामें आ गये थे, क्या ठीक है यह बात ? बराबर है ? तो कहा था `इतना तो चोक्कस याद नहीं रहा, मैं तो बहुत धुनमें था। उसी रात मुझे निर्विकल्पदशा आयी या दूसरी रातको - ये अभी उतना याद नहीं रहा।' वास्तवमें तो उनका उपयोग भी उसवक्त नहीं होगा, वे तो धुनमें चढ़े हुए थे। पहली रात हो चाहे दूसरी रात हो इसमें कोई इतना फ़र्क नहीं पड़ता। दूसरे मुमुक्षुओंको (पहली रातका) ही कहा था इसलिए उन्होंने मुझे ऐसा ही कहा। लेकिन मैंने जब पूछा था तब ऐसा कहा था। ये तो मुझे याद है इसलिए कहता हूँ। मतलब क्या है कि, उन्हें पहली-दूसरी रातका कोई महत्त्व नहीं था। इसलिए उस बाबतमें खुद दावेके साथ कुछ नहीं कहते थे। वे तो ऐसा ही कहते थे कि, मैं धुनमें था। पहली रात हो चाहे दूसरी रात हो -

इतना निश्चितरूपसे खयालमें नहीं रहा। परंतु दूसरे किसीको भी बात कही होगी, पहली रातकी ही बात की होगी। मेरे साथ बात करते हुए तो वे जैसा होगा वैसा ही मुझे (कहेंगे)। उस वक्त जैसा हो वैसा कहेंगे। अन्यथा करनेका कोई कारण नहीं है। उन्हें उतना स्पष्टरूपसे याद नहीं रहा।

(पन्ना-१२०)

एकबार सोगानीजीकी उपस्थितिमें (गुरुदेवश्रीकी) रात्रिचर्चामें यह प्रश्न पर चर्चा चली थी। याद आया (इसलिए कहता हूँ)। जिस दिन रात्रिचर्चामें यह प्रश्न चला था उसी दिन शामको मैं गुरुदेवके पास एकांतमें (मिलने) गया था। गुरुदेवको सोगानीजीके बारमें बात की थी कि, कलकत्तासे न्यालचंदजी सोगानी करके जो आते हैं उनके साथ इन दिनों काफी तत्त्वचर्चा चलती है। वे जो चर्चा करते हैं और इसमें जो उनकी बातें आती हैं, लगता है जैसे `वात ठेठथी आवे छे' (अर्थात् बहुत गहराईमेंसे आती है।) ऐसा शब्दप्रयोग मैंने किया था। गुरुदेवको ऐसे नहीं कह सकते कि, साहब ! ये ज्ञानी हैं, ये सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा हम नहीं कह सकते, उसमें विनय है। फिर तो अब बातको रखे कैसे ? ये तो बहुत Delicate position (नाजुक परिस्थिति) थी। नाजुक परिस्थितिमें गुरुदेवके आगे कैसे निवेदन करना कि, ये ज्ञानी हैं। (फिर भी) इतनी बात की थी कि, कलकत्तासे एक मारवाड़ी भाई निहालचंदभाई (नामसे आते हैं)। (तो गुरुदेवने कहा) `हाँ, हाँ, आगे बैठते हैं।' पास-पासमें बैठते थे, प्रवचनमें हम लोग पास-पासमें बैठते थे। (फिर मैंने कहा),

(उनके साथ) तत्त्वचर्चा चलती है, `तेमां वात बहु ठेठथी आवे छे।' गुरुदेवने पूछा `ठेठथी वात आवे छे एटले ?' (मैंने कहा) `आपकी कृपा हुई हो ऐसा लगता है।' क्या कहा ? `उस आत्मा पर आपकी कृपा हुई हो ऐसा लगता है।' बस ! गुरुदेव एकदम Serious (गंभीर) हो गये। (वैसे) शामको चक्कर लगानेके पश्चात् गुरुदेव पाट पर अचूक बैठते। दो-चार जन साथमें चक्कर लगानेमें होते थे। खानेका टाइम होते ही वे लोग निकल जाते। क्योंकि गुरुदेव तो पाँच-सवा पाँच बजे खाना खा लेते थे। प्रायः सब लोग वहाँ साढ़े पाँच, छः, सवा छः बजे तक खा लेते थे। इसलिए गुरुदेवके साथ चक्कर लगानेवालेका खाना तो बाकी होता था इसलिए सब उस वक्त बिखर जाते थे। गुरुदेव अकेले पाट पर बैठे होते। फिर कोई न कोई आने लगता। (उस दिन) दूसरे (लोग) निकल गये लेकिन तब मैं रुक गया। उस वक्त गुरुदेवको यह बात की थी। गुरुदेव एकदम गंभीर हो गये। गंभीर हो गये और गहरी सोचमें पड़ गये हो वैसे नीचे देखते हुए मौन हो गये। (इतनमें) कोई बुजुर्ग भाई आये, पगड़ी पहनी हुई थी। मैं नहीं पहचानता था और आकर सीधा उन्होंने गुरुदेवके चरण स्पर्श किये। आते ही गुरुदेवके चरण स्पर्श किये इसलिए गुरुदेवका उपयोग जो विचारमें लगा हुआ था, (फिर उन्होंने उनकी ओर ऊपर देखा)। आनेवालेको पता नहीं था कि, बात क्या चल रही है, क्योंकि वे तो मौजूद नहीं थे। अतः आते ही बैठनेके पहले उन्होंने सीधा चरण स्पर्श किया। बैठनेके पहले चरण स्पर्श करके ही बैठेंगे तो (यूँ) अँगूठाका स्पर्श हुआ तब गुरुदेवने

ऊपर देखा कि, हम दोनों ही बैठे थे और ये कौन आया ? जैसा ही उनके सामने देखा कि उन्होंने बात करना शुरू किया। उन्होंने गुरुदेवको किसी बातमें पूछा या तो कोई बात चालू कर दी। (इसलिए) गुरुदेव उनके साथ बातमें जुड़े। उस भाईने बात आगे बढ़ाई। इस दौरान गुरुदेवने जो पूछा था और जो बात कही थी, गुरुदेवने जो मुझे पूछा, और मैंने जो जवाब दिया वह उपयोग पूरा बदल गया। परंतु मेरा काम तो पूरा हो गया था। क्योंकि मैं कोई अपेक्षा लेकर गया नहीं था कि, गुरुदेव मुझे क्या जवाब देते हैं ? मैं तो इतना सोचकर गया था कि, गुरुदेवको सोगानीजीके बारेमें कुछ दो शब्द सीधे नहीं कहकर कैसे भी इस बातसे वाक़िफ करना। बस ! इतनी बात हुई थी। फिर तो दूसरे दो भाई आये, फिर तो जो पाँच-दस लोग बैठते थे, वे सभी समय हुआ कि आने लगे। अतः दो आये, तीन आये, चार आये, फिर तो मैंने देखा कि यह जो अंगत बात है वह अब नहीं चलेगी (फिर भी) दस-पंद्रह मिनट मैं बैठा रहा। दूसरी-दूसरी बातें चलने लगी इसलिए मैं समझ गया कि अब शायद गुरुदेव यह विषय नहीं लेंगे। जब कि यह विषय भी परिचयका है, प्रत्यक्ष परिचयका है। आपसमें प्रत्यक्ष परिचय जब तक न हो तब तक किसीका कहा हुआ मान लेना, ऐसा कोई नहीं करेगा। ज्ञानी तो क्या ! कोई नहीं मानेगा। सामान्यतया ऐसी परिस्थिति है। (क्योंकि) यह विषय इतना गंभीर व मूल्यवान है। अतः दूसरी अपेक्षा भी रखना उचित नहीं था कि गुरुदेव इसे स्वीकार कर ले या मान ले, ऐसा तो था नहीं। अपना

काम तो था उनके लक्ष्यमें बातको रख देना। लक्ष्यमें बात रखनेका ही काम था। फिर मैं तो खानेका समय हुआ इसलिए उठ कर चला गया।

रात्रिचर्चामें गुरुदेव पधारें। (चर्चामें) कोई विषय नहीं चल रहा था, खुदने ही विषय शुरू किया। ऐसे तीन अंगूली दिखाई। चलते हुए विषयका अनुसंधान क्या है, इसमेंसे याद आया। तीन अंगूली दिखाकर (कहा कि) जड़-पुद्‌गल संयोग हैं उसके लक्ष्यसे जीवको राग होता है इसलिए वह परद्रव्य और हेय है, क्या (कहा) ? जड़ जो संयोगरूप है उसका लक्ष्य करनेसे जीवको राग उत्पन्न होता है, विभाव होता है - वह है तो परद्रव्य, परंतु परद्रव्य है और हेय (भी) है।

(फिर) दूसरी अंगूली ली (और कहा कि), रागादि - पुण्यके परिणाम हो चाहे कोई भी हो परंतु उसके लक्ष्यसे - रागके लक्ष्यसे जीवको राग ही होता है। अतः वह भी परद्रव्य है और हेय है।

(फिर यूँ तीसरी अंगूली दिखाकर कहा कि), एक समयकी शुद्ध सम्यग्दर्शनकी पर्याय हो या फिर चाहे केवलज्ञानकी हो, उसके लक्ष्यसे भी जीवको राग होता है, इसलिए वह परद्रव्य है और हेय है। ऐसा खुदने न्याय दिया। न्याय देकर फिर तुरंत सोगानीजीको संबोधन किया `क्यों न्यालभाई ?' तुरंत ही (संबोधन किया), निहालभाईको बोलनेका विकल्प तो आ गया (फिर भी) बोले नहीं। एक दूसरा विकल्प तब आ गया। वह बात फिर बाहर निकलकर मेरे साथ हुई।

इस न्यायके ज़रीये वास्तवमें तो गुरुदेवने उन्हें बुलवानेकी

Try की, क्योंकि मैंने बात कहीं थी कि, `ठेठथी वात आवे छे।' इसलिए गुरुदेवने `ठेठ सुधीनी' (चरमसीमाकी) बात ले ली। एक समयकी केवलज्ञानकी पर्याय भी परद्रव्य है और हेय है। यह बात चर्चामें ले ली। (उस वक्त) इसकी कोई चर्चा नहीं चलती थी। स्वयंने ही एक बात शुरू की। अगर उस दिन चर्चा हुई होती तो उस दिन प्रसिद्धिमें आ गये होते। परंतु कुदरती ये कुछ बोले नहीं। (क्यों) नहीं बोले उसका कारण बादमें कहता हूँ। परंतु यहाँ तक कि बोलनेका मन हुआ फिर भी नहीं बोले। फिर तो चर्चा लंबी चली। गुरुदेवने फिर से चर्चा ली किन्तु (ये) कुछ बोले नहीं इसलिए वापिस संबोधन नहीं किया था। (बातको) फिरसे स्पष्ट किया। वैसे भी गुरुदेव वक्तव्यमें एक ही बातको पुनः पुनः दोहराते थे। फिर तो चर्चाका समय पूरा हो गया।

(हमलोग) बाहर निकले और (स्वाध्याय मंदिरके) कंपाउन्डमें थे तब बोले कि, `आज गुरुदेवने चर्चामें अपनी जो चर्चा चलती है वही विषय लिया और मुझे भी संबोधन किया।' (अतः मैंने कहा), `आप क्यों बोलते नहीं हो ? जब गुरुदेवश्री चलाकरके आपको चर्चामें शामिल करते हैं तो फिर आप क्यों नहीं बोलते हो ?' तब उन्होंने कहा `बोलनेका विकल्प तो आया था (और) बोलता भी, लेकिन एक दूसरा विकल्प खड़ा हो गया कि अगर मैं बोलूँगा तो बात तो पूरी खुल जायेगी। (और) बात खुल जायेगी तो, यहाँ तो मेरेसे पुराने-पुराने, बड़े-बड़े (लोग) जिसकी प्रतिष्ठा बहुत है, ऐसे लोग भी बैठे हैं। उनका अच्छा नहीं लगेगा। वे तो पुराने हैं और मैं तो नया आदमी हूँ।

मैं कुछ बोलूँ तो बात बाहर हो जाये।' बोले जब तो बात बाहर आ जाये। बोले जब तो तुरंत नाप आ जाये। गुरुदेवके समक्ष यदि बोले तो बोलका तोल होनेमें तो देर नहीं लगती। गुरुदेवका तो उपयोग सूक्ष्म है।

गुरुदेवके पास (सोगानीजीके बारेमें) निश्चयाभासी हैं, ऐसी बात तो पहुँच गई थी। इसलिए (मैंने) बात कही थी। परंतु गुरुदेव तटस्थ रहे थे। बिना परिचय अपना अभिप्राय तो वैसे भी नहीं देते। इस बीच मैंने बात की। इसलिए (दूसरोंसे) विरुद्ध अभिप्राय तो मेरी तरफसे मिल गया। कोई दूसरा अभिप्राय मिला था इससे मैंने कोई दूसरी बात कर दी इसलिए फिर खुदने प्रत्यक्ष चर्चा शुरू की, तो ये (सोगानीजी कुछ) बोले नहीं। बोलनेका विचार आया फिर भी बोले नहीं। विचार आया फिर भी क्यों नहीं बोले ? (क्योंकि) तुरंत ही ऐसा दूसरा विचार आ गया। First thought पर सीधा Second thought आ गया। उनको तो ऐसा लगा कि मेरा अच्छा दिखेगा और दूसरोंका अच्छा नहीं दिखेगा, दूसरोंका अच्छा न दिखे, यह बात ठीक नहीं। ऐसा सहज विकल्प आ गया। इसलिए बोलना सहज ही अटक गया। अगर बोले होते तो उस दिन प्रसिद्धि हो जाती। परंतु कुदरतके क्रममें जो घटना बननेवाली हो वही बनेगी न ! इसका नाम है कुदरत ! (पन्ना-२३७)

□

श्री सोगानीजी के संबंध में...

(पूज्य भाईश्री के दि. २९-७-१९९१ के प्रवचनमें से)

मुमुक्षु :- गुरुदेवने उनके बारेमें एकावतारी हैं ऐसा कहा लेकिन उनको खुदको पता लग गया हो ऐसा उल्लेख कहीं आता है ? कि जैसे मैं एकावतारी हूँ !

पूज्य भाईश्री :- उनको खुदको खयालमें नहीं आया, ऐसा खयाल गुरुदेवश्रीको आया है। वे खुद तो इसी भवमें पूर्णता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए थे। हमलोगोंको विशेष परिचय था तो ऐसा लगता था कि, अगर आयुष्य होता तो शायद ऊपरके गुणस्थानमें आ जाते (यानी कि) मुनिदशामें (आ जाते!) बहुत पुरुषार्थ था ! (अगर ऐसा होता) तो इस कालमें भावलिंगी मुनिके दर्शन हो जाते !! लेकिन आयुष्य भी न था और वस्तुतः जो बनना होता है (वही बनता है।) वस्तुस्वरूपमें क्या फ़र्क पड़ सकता है ? लेकिन मुनिदशा ऐसे जीव प्राप्त करते हैं, इतना तीखा पुरुषार्थ था ! बहुत तीखा पुरुषार्थ था !!

मुमुक्षु :- उनका अंगत लिखा हुआ कुछ है ?

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं मिला है। कोई बात नहीं मिली। एक तो स्वयं किसीके संगमें रहनेके मतमें नहीं थे। किसी साधर्मीके संगमें रहनेके भी मतमें नहीं थे। और गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, कोई न जाने वैसे गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, इसके अलावा उनका वर्तमान परिस्थितिमें दूसरा

कोई अभिप्राय नहीं था। (बाह्य) प्रसिद्धिसे आत्माको क्या लाभ है ? नुकसानका कारण है। नुकसान करे तो निमित्त होता है, न करे तो दूसरी बात है। परंतु जितना मर्यादित समय है, उस मर्यादित समयको एकान्तमें बैठकर ध्यानमें - आत्मध्यानमें विशेषरूपसे लगाना - यह उनकी मुख्य वृत्ति थी। इस वज़हसे शास्त्र स्वाध्याय भी कम था। सत्संग तो नहीं था परंतु घरमें शास्त्र स्वाध्याय भी कम था, क्योंकि पुरुषार्थकी कला हस्तगत् थी। इसलिये जितना समय मिले उतना ध्यानमें बैठ जाते। दिन हो चाहे रात हो जितना समय मिले उतना (ध्यानमं बैठ जाते।) उस प्रकारसे काममें लगे रहते।

(आगे पत्रांक - १४में) नहीं आया ! एक ही बारमें अथाहका थाह ले लेना, पन्ना १३ `**पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, मानो अथाहकी थाह सदैवके लिये एकबारमें ही पूरी ले लेगा।**' अथाह माने जिसके नीचे कोई तलवा न हो, मर्यादा न हो, सीमा न हो। `भले ही सीमा न हो, पूरा कर दूँगा' एक ही बारमें पूरा कर लेना है ! खुदके पुरुषार्थका प्रकार उनको ऐसा लगता था। वस्तुस्वरूप अन्यथा नहीं होता कि अभी पूर्णता प्राप्त हो जाये। लेकिन वे तो उस बातको गौण करके ही लग गये थे - श्रीमद्जीकी तरह ! इसलिये एकावतारीपना आया, गुरुदेवको ज्ञानमें ऐसा क्यों भासित हुआ ? (उसका कारण यह है)

(गुरुदेवश्रीने) बहुत गंभीरतासे यह बात कही थी। आगे-पीछे कोई चर्चा नहीं चलती थी। मौन होकर चक्कर लगा रहे थे। सुबह १० बजे आहार लेनेके पश्चात् स्वाध्याय मंदिरके

हॉलमें थोड़े चक्कर लगाकर फिर अपनी रूममें चले जाते। उस दिन सब मौन थे। कोई बात-चीत नहीं चलती थी। इतनेमें (अचानक) चलते-चलते खड़े रह गये। यहाँसे (भुजा) पकड़कर (कहा था)। भुजासे पकड़ते थे, जब कोई खास बात करनी हो तो हाथ पकड़कर बात करते थे, तो वैसे यहाँसे (हाथ) पकड़ा (फिर कहा) `**देखो ! यह अंदरसे आयी हुई बात है** !' बहुत गंभीरतासे (बोले) कि `**देखो ! ये अंदरसे आयी हुई बात है। ये सोगानी है न ! यहाँसे स्वर्गमें गये हैं, वहाँसे निकलकर झपट करेंगे।**' खास उनका काठियावाड़ी शब्द है। `**वहाँसे निकलकर झपट करेंगे, हमारे तो चार भव हैं। तीर्थंकरके भवमें तीर्थंकर अरिहंतको नमस्कार नहीं करते। दीक्षा लेते वक्त `णमो सिद्धाणं' ऐसा उच्चार जब हम करेंगे तब हमारे नमस्कार उनको पहुँचेंगे।** क्योंकि उस वक्त वे सिद्धालयमें पहुँच गये होंगे ! बहुत गंभीरतासे ये बात की थी। उनका (सोगानीजीके) पुरुषार्थका प्रकार कैसा था ! उसका परिमाण, माप जिसे कहते हैं, यह गुरुदेवके ज्ञानमें आया है। सीधी बात तो यह है। (पन्ना-१०४)

☐

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

ग्रंथ का नाम एवं विवरण		मूल्य
०१	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृत्तोंका संकलन)	१५०-००
०४	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५	आत्मअवलोकन	-
०६	बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९	दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१०	धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर ॉ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११	दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२	धन्य पुरुषार्थी	-
१३	धन्य अवतार	-
१४	गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५	गुरु गिरा गौरव	-
१६	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७	कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८	कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२०	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-

२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत्त)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत्त (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत्त)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४०	समयसार कलस टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००

-

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦

૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-૫૦૪,૩૩૩,૩૩૫,૪૬૬,૬૭૯ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००

२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	५०००
३१	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	२३००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजरात+हिन्दी)	३५००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२५००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	३०००

६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	२५००
६५	वचनामृत रहस्य	१०००
६६	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
६७	कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती)	२५००
६८	प्रवचन सुधा (भाग-१)	१४००
६९	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७०	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७१	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७२	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	७५०
७३	प्रवचन सुधा (भाग-२)	७५०
७४	समयसार दोहन	७५०
७५	गुरु गुण संभारणा	७५०
७६	सुविधिदर्शन	१०००
७७	समकितनुं बीज	१०००
७८	स्वरूपभावना	१०००
७९	प्रवचन सुधा (भाग-३)	१०००
८०	प्रवचन सुधा (भाग-४)	१०००
८१	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१	१०००
८२	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२	१०००
८३	सुविधि दर्शन (हिन्दी)	१०००
८४	प्रवचन सुधा (भाग-५)	१०००
८५	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१)	१०००
८६	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२)	१०००
८७	वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००
८८	प्रवचन सुधा (भाग-६)	१०००
८९	राज हृदय (भाग-१)	१५००
९०	राज हृदय (भाग-२)	१५००
९१	अध्यात्मसुधा (भाग-१)	१०००
९२	अध्यात्मसुधा (भाग-२)	१०००
९३	गुरु गिरा गौरव (भाग-१)	१०००

९४	अध्यात्म सुधा (भाग-३)	१०००
९५	प्रवचन सुधा (भाग-७)	७५०
९६	प्रवचन सुधा (भाग-८)	७५०
९७	राज हृदय (भाग-३)	७५०
९८	मुक्तिनो मार्ग (गुजराती(	१०००
९९	प्रवचन नवनीत (भाग-३)	१०००
१००	प्रवचन नवनीत (भाग-४)	१०००
१०१	प्रवचन सुधा (भाग-९)	७५०
१०२	गुरु गिरा गौरव (भाग-२)	७५०
१०३	प्रवचन सुधा (भाग-२) हिन्दी	१०००
१०४	प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती)	७५०
१०५	प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती)	७५०
१०६	धन्य आराधक (गुजराती)	७५०

पाठकों की नोंध के लिये